महामना

पं० मदनमोहन मालवीय

लेखक

श्री० पं० नृसिंहराम शुक्ल

प्रकाशक

हिन्दी प्रेस, प्रयाग

प्रथम वार] [मूल्य ।)

विषय-सूची

महामना

पं० मदनमोहन मालवीय

लगभग चार सौ वर्ष हुए होंगे कि मालवा प्रान्त से ब्राह्मणों का एक बड़ा समूह आकर प्रयाग के आसपास के प्रान्तों में बसा। मालवा प्रान्त से आने के कारण ये लोग मालवीय कहलाये। हमारे चरित-नायक इसी अमूल्य-रत्न मालवीय कुल के हैं। आपका जन्म प्रयाग में २५ दिसम्बर सन् १८६१ ई०

को हुआ । आपके पूज्य पिताजी का नाम पण्डित ब्रजनाथजी था । वे बड़े विद्वान् तथा यशस्वी थे । यों तो आपके सभी पूर्वज संस्कृत भाषा तथा धर्मशास्त्र के बड़े ज्ञाता होते चले आये हैं; पर पण्डित ब्रजनाथजी अपने समय के एक बड़े भारी विद्वान् माने जाते हैं । छोटे से बड़े तक सभी आपकी विद्वत्ता तथा नम्रता की सराहना किया करते थे । आपको भगवद् गीता तथा अन्य कई धार्मिक ग्रंथों का विशेष रूप से ज्ञान था । भूतपूर्व महाराजाधिराज काशीराज तथा वर्तमान महाराज दरभंगा के पितामह आपको गुरुस्वरूप मानते थे तथा सदा आपके पाण्डित्य की प्रशंसा किया करते थे । आपने संस्कृत भाषा में कई ग्रंथ बनाये, जिन्हें भविष्य में चल कर आपके योग्य पुत्र पण्डित मदनमोहन मालवीय ने छपाकर प्रकाशित कराया । धार्मिक शिक्षा तथा अन्य प्रकार की व्यावहारिक शिक्षा देकर आपने अपने पुत्र को बड़ा ही योग्य बनाया । आप सर्वदा यही प्रयत्न करते रहते थे कि आपकी संतान योग्य बने । ईश्वर की अनुकम्पा से आपने बहुत दिनों जीवित रह कर अपनी आँखों से अपने इस इच्छा-रूपी वृक्ष को फूलते और फलते देखा । मालवीयजी अपने पिताजी के तीसरे पुत्र हैं ।

जबतक मालयीयजी पाठशाला जाने के योग्य नहीं हुए थे, तबतक घर ही पर आपकी शिक्षा होती रही । शिक्षा-काल समीप आने पर आप 'धर्मज्ञानोपदेश' नामक संस्कृत-

पाठशाला में भेजे गये। वहाँ से आकर आप धर्मवर्धिनी सभा पाठशाला में भरती हुए। वहाँ आरंभिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् आप गवर्नमेन्ट हाई स्कूल इलाहाबाद में पढ़ने आये और वहीं से आपने सन् १८७९ में एन्ट्रेन्स की परीक्षा कलकत्ता विश्वविद्यालय-द्वारा पास की क्योंकि उन दिनों प्रयाग में विश्वविद्यालय नहीं था। तत्पश्चात् म्योर कालेज में नाम लिखवाया, वहाँ से आपने सन् १८८१ में एफ० ए० तथा १८८४ में बी० ए० की परीक्षायें पास कीं। जिस समय आप म्योर कालेज में पढ़ते थे उस समय पण्डित मोतीलालनेहरू तथा सर सुन्दरलाल भी उसी कालेज में पढ़ते थे।

बी० ए० की परीक्षा पास करने के बाद कई कारणों से आप आगे न पढ़ सके तथा थोड़े ही दिन एम० ए० में पढ़ने के बाद आपने पढ़ना छोड़ दिया। मालवीयजी के विद्यार्थी-जीवन में कोई ऐसा चमत्कार न था। आप साधारण श्रेणी के विद्यार्थी थे। इसके कई कारण हो सकते हैं। पर उनमें सबसे प्रधान कारण यह था कि मालवीयजी अपना अमूल्य समय देश-सेवा में लगाया करते थे। देशहित और समाज-सुधार तभी से आपके जीवन का प्रधान लक्ष्य रहा है। पढ़ाई छोड़ने के बाद ही आप इलाहाबाद के गवर्नमेन्ट स्कूल में अध्यापक नियुक्त हुए। यह काम आपने तीन वर्ष तक बड़ी योग्यता से किया। उस समय वहाँ पहले आप को

५०) रु० फिर ७५) रु० मासिक वेतन मिलता था। उन दिनों भला यह किसे मालूम था कि सरकारी स्कूल का एक ५०) मासिक वेतन पानेवाला साधारण शिक्षक भविष्य में चल कर एक बड़े विश्व-विद्यालय का प्रधान संचालक बनेगा। नौकरी में भी आपने देश-सेवा और समाजाहित के कार्यों से मुख नहीं मोड़ा। आपके परिश्रम का यह फल हुआ कि देश के लगभग अधिकांश बड़े लोग आपको जान गये।

काला काँकर के भूतपूर्व राजा रामपालसिंहजी अपने समय के एक बड़े भारी स्वदेश-भक्त, शिक्षा-सुधारक तथाविद्या-प्रचारक हो चुके हैं। आप उन दिनों अपने यहाँ से 'हिन्दुस्तान' नाम का एक दैनिक पत्र निकलवाते थे। राजा साहब मालवीयजी से बहुत प्रसन्न रहा करते थे। और इनकी देश-सेवा तथा विद्वत्ता की प्रशंसा किया करते थे। इसलिए उन्होंने मालवीयजी को ही उसका सम्पादक बनाना अच्छा समझा। मालवीयजी बड़ी दक्षता के साथ लगभग तीन वर्ष तक पत्र का सम्पादन करते रहे। मालवीयजी ने अध्यापक का पद इसलिये त्याग किया कि ये अपने नये पद पर रहकर उससे विद्या-प्रचार में अधिक सहयोग कर सकते थे। जिस समय आप 'हिन्दुस्तान' पत्र का सम्पादन कर रहे थे उस समय आपके अनेक शुभचिन्तकों ने आप को कानून की परीक्षा पास करने की सलाह दी। उनमें विशेष उल्लेखनीय नाम कांग्रेस के जन्मदाता मिस्टर ए० ओ० ह्यूम महोदय, पं०

अयोध्यानाथजी, राजा रामपालसिंह तथा स्व० सर सुन्दर-लालजी हैं। ये लोग आपके सच्चे मित्रों में से थे। विशेष कर ए० ओ० ह्यूम महोदय से आपने बहुत कुछ शिक्षा पाई है। आप उनके विशेष-रूप से प्रिय थे। इन लोगों के अनुरोध करने से मालवीयजी क़ानून पढ़ने लगे। दिन में क़ानून पढ़ने के लिए कालेज जाते और फिर जो समय बचता उसे 'हिन्दुस्तान' को अर्पण करते। आपने सन् १८९१ में एल-एल० बी० की परीक्षा पास की और फिर दो वर्ष के बाद वकालत आरंभ की। उस समय पण्डित अयोध्यानाथजी ने मिस्टर ए० ओ० ह्यूम से कहा था कि "जबसे पण्डित मदनमोहन मालवीय ने क़ानूनी-जीवन आरंभ किया तब से वे काँग्रेस के कार्यों में बहुत कम सहयोग देते हैं।" उस समय ह्यूम महोदय ने एक सच्चे शुभचिन्तक के रूप में पण्डित अयोध्यानाथजी से यही कहा कि "ठीक है, उन्हें क़ानून की ही ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।" फिर उन्होंने मालवीयजी से कहा, "मदन-मोहन! ईश्वर ने तुमको बड़ी भारी मानसिक प्रतिभा दी है, तुम अपनी उस प्रतिभा को दस वर्ष तक इसी जीवन में व्यतीत करो, जिससे तुम एक दिन उन्नति के शिखर पर पहुँच जाओगे। जो अनुभव और ज्ञान तुम इस दस वर्ष के जीवन में प्राप्त कर लोगे वह भविष्य में चलकर तुम्हारा सहायक होगा तथा जनता में तुम्हारी उपयोगिता को बढ़ावेगा।" पर आप उपरोक्त आदेशानुसार कार्य न कर सके।

जिसका कारण यही था कि आपको यथेष्ट समय नहीं मिलता था और साथ ही साथ यह कि आप उसके लिए अधिक ध्यान भी नहीं देते थे। उन्हें महज़ वकील होकर धन कमाना अच्छा नहीं जँचता था। उनकी इच्छा थी कि मैं जनता के बीच धार्मिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी सुधार करूँ। उनकी इस इच्छा ने उन्हें क़ानूनी संसार में अधिक प्रसिद्ध नहीं होने दिया। उस समय के प्रयाग के एक क़ानूनदाँ की यह कहावत अब तक प्रसिद्ध है कि (मालवीयजी के पैरों के पास ही गेंद पड़ी थी, पर उन्होंने उसे आगे नहीं बढ़ाया)।

अर्थात् उन दिनों मालवीयजी के लिए यह संयोग था कि जब कि ये क़ानूनी दायरे में एक बड़े नामी वकील हो सकते थे, पर इन्होंने उस संयोग को छोड़ दिया।

यहीं से आपके सार्वजनिक जीवन का आरंभ होता है। अब तो देश-सेवा, शिक्षा-प्रचार, धार्मिक तथा सामाजिक सुधार आदि में तल्लीन होकर देश के एक कोने से दूसरे कोने तक ये चक्कर लगाया करते हैं। अब तो रेल का डब्बा ही इनका मकान है सारा देश इनका कुटुम्ब है। हिन्दू-विश्व-विद्यालय का छात्र-मण्डल इनके पुत्र और पुत्रियाँ हैं। ये हिन्दू-विश्व-विद्यालय, हिन्दू-समाज तथा हिन्दुस्तान के लिए जीते हैं। जनता के ही दुःख से ये दुःखी और जनता के ही सुख से सुखी होते हैं।

इस समय आपकी चार संतानें हैं। उनमें से बड़े का नाम पण्डित रमाकान्त मालवीय है। आप प्रयाग में वकालत करते हैं। दो पुत्र बम्बई में व्यापार करते हैं। सब से छोटे पण्डित गोविन्दकान्त मालवीय एम० ए०, एल-एल० बी हैं जो विशेष कर अपने पिताजीके साथ ही रहते हैं। आप बड़े उत्साही नवयुवक हैं। ग़रीब और दुःखी विद्यार्थियों के सहायतार्थ आप सर्वदा सच्चे हृदय से तैयार रहते हैं। आप बड़े स्वदेश-भक्त हैं।

मालवीयजी द्वारा धार्मिक-सुधार

पाश्चात्य देश के प्रसिद्ध विद्वान् श्री० मैक्समूलर का कहना है कि—"भारतवर्ष एक धर्मप्राण देश है। भारतवासियों का प्रत्येक कार्य धार्मिक नींव पर स्थित है। चलने में, उठने में, बोलने में, भोजन करने में, अर्थात् प्रत्येक कार्य में, वे धर्म का ही अवलम्बन करते हैं।" भगवान् मनु ने भी लिखा है।

"एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्व मानवाः"

अर्थात् इसी पुण्य भूमि भारत की संतान से, सब देशों से अगणित प्राणी अपनी-अपनी धार्मिकता जातीयता तथा चरित्र सुधार के लिए शिक्षा प्राप्त करते थे। पर आज समय के उलट फेर-के कारण भारत, संसार की आँखों में नीचे गिरा हुआ है—आज यहाँ के लोग अर्ध-सभ्य या बिलकुल

असभ्य के नाम से पुकारे जाते हैं। ऐसा क्यों न हो? आज देश में धर्म के नाम पर अधर्म होता है। पुण्य की जगह पाप होता है। पाखंडी लोगों के हाथ में ही धर्म का ठेका है। आजकल हिन्दू-धार्मिक-जगत में बड़ी ही हलचल मची है। एक ओर सभी जातियाँ वर्णाश्रमधर्म के नियमों का उल्लंघन कर रही हैं। दूसरी ओर पाश्चात्य सभ्यता के बाह्य-रूप को देखकर इस बुड्ढे हिन्दू-समाज का भी मन चलायमान हो गया है। अब हिन्दू-धर्म से कई शाखायें फूट निकली हैं। एकता न होने के कारण ही आज हिन्दू- समाज पर अन्य धर्मावलम्बियों के प्रबल आक्रमण जारी है। नन्हें-नन्हें बच्चे, भोली-भाली बालिकायें, जवान बहू-बेटियाँ दूसरों के द्वारा सताई जा रही हैं। वास्तव में इस समय हिन्दू-जाति पर जो विपत्ति के बादल छाये हुए हैं उन्हें देख कर बड़ा ही दुःख होता है।

कुछ समय हुआ जब श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती पैदा हुए थे। उन्होंने बहुत कुछ प्रयत्न किया था जिससे हिन्दू-धर्म के बाह्य-शत्रु कुछ शिथिल पड़ गए थे। पर उनके उपदेश के कारण हिन्दू-समाज में एक नवीन समुदाय का जन्म हुआ। नवीन भाव से प्रेरित हो कर लोगों ने अत्यधिक संख्या में इस समाज में प्रवेश किया। इस समाज का नाम आर्य-समाज पड़ा। प्राचीन विचार के रखनेवाले व्यक्तियों को इस नवीन समाज की प्रत्येक कार्य-प्रणाली में कुछ न कुछ त्रुटि ही दिखाई

दी । नवीन समाज के विचार-स्वातन्त्र्य ने हिन्दू-समाज में क्रान्ति मचा दी, जिसके फल-स्वरूप नवीन समाज और प्राचीन समाज में घोर कलह और विद्वेष फैल गया । आज उस विद्वेष की अग्नि बहुत कुछ बुझ चुकी है, उसकी राख ठन्डी हो रही है । इस आग के बुझाने का बहुत कुछ श्रेय महामना मालवीयजी को है । आज हिन्दू-समाज का प्रत्येक सदस्य यह कह सकता है तथा इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं कि इन दोनों दलों में आज जो प्रेम का भाव है, उसके उद्भावक मालवीयजी ही हैं । आज उन्होंने जो हिन्दू-महासभा स्थापित की है, उसने बाईस करोड़ हिन्दुओं को एक प्रेम-सूत्र में बाँध लिया है । क्या हिन्दू, क्या आर्य्य-समाज अथवा हिन्दू-समाज के किसी भी सम्प्रदाय का सदस्य एक दूसरे को अपना सहयोगी तथा भाई समझता है या यों कहिये कि जिस मकान की नींव श्री० स्वामी दयानन्द ने डाली थी और जिसकी नींव को मज़बूत कर श्री० स्वामी श्रद्धानन्दजी ने दीवार खड़ी करने में अपना आत्मत्याग किया उस मकान को महामना मालवीयजी ने बहुत कुछ पूरा करने का उद्योग किया । उसके फलस्वरूप मकान की बहुत कुछ पूर्त्ति भी हो चुकी है, । अब आगे उस मकान की पूर्ति होती है या वह अधबना रह जाता है यह भविष्य के गर्भ में छिपा है । जिस समय हिन्दू-महासभा की स्थापना नहीं हुई थी, उस समय एक जाति का दूसरी से, एक सम्प्रदाय वालों का दूसरे के

साथ लेशमात्र भी प्रेम नहीं था। हमारे विरोधी एक-एक करके सब सम्प्रदाय वालों को कष्ट दे रहे थे। एक दूसरे की दशा को देखता था पर कुछ भी सहानुभूति न दिखाता था। आज यदि भारत के किसी कोने में हिन्दू-समाज के ऊपर किसी प्रकार की विपत्ति सुनाई देती है तो सारे भारत के लोग उस स्थान पर धन-जन द्वारा उसकी सहायता करने को उद्यत हो जाते हैं। आज जो एक हिन्दू दूसरे को भाई की तरह मानता है यह उसी हिन्दू-महासभा का ही प्रभाव है। इस महासभा के स्थापन और संचालन में मालवीयजी ने ख़ूब परिश्रम किया है।

हिन्दू-समाज पर इस अपकीर्ति का टीका लगा गया है कि हिन्दू बड़े ही कायर, निर्बल एवं डरपोक होते हैं। ये शब्द कितने लज्जास्पद हैं? इससे हिन्दू-समाज का मस्तक नत हो जाता है। मालवीयजी ने इस कलंक को भी मिटाने का यथेष्ट उद्योग किया है। जगह-जगह उपदेश दे-देकर 'महावीर-दल और महावीर अखाड़े स्थापित कराए हैं। युद्धशाला, मल्ल-शाला आदि के लिए आप सर्वदा उत्सुक रहते हैं। जब कभी बालकों से मिलते हैं, तब उनसे यही कहते हैं—"अखाड़ा खनो, ख़ूब लड़ो। ख़ूब कसरत करो, जिससे ख़ूब मज़बूत बनोगे" इन 'महावीर-अखाड़ों में नाना प्रकार के देशी-व्यायामों की शिक्षा दी जाती है। पंजाब, मध्यप्रान्त तथा बम्बई की तरफ़ ऐसे बहुत से अखाड़े हैं। उनमें सबसे प्रसिद्ध अमरावती का 'व्यायाम-मन्दिर' है। मालवीयजी के धार्मिक-प्रेम का इतिहास

बहुत ही पुराना है। जिस समय आप प्रयाग में विद्यार्थी थे, उसी समय आपने यहाँ हिन्दू-समाज नामकी संस्था क़ायम की थी। सन् १९०६ ई० में प्रयाग में जो सनातन-धर्म-महा-सभा हुई थी उसमें भी आपका विशेष हाथ था। आपका इस प्रकार का धार्मिक जीवन आपके माननीय पिताजी की सुशिक्षा के ही कारण हुआ।

जिस समय हिन्दू-महा-सभा की नींव ख़ूब मज़बूत हो गई, उसी समय उसका भार और लोगों पर छोड़ कर आप सनातन धर्म के सुधार की ओर झुके। निम्न लिखित उद्देश्यों को अपने सामने रखते हुए आपने एक 'अखिल-भारतवर्षीय सनातन धर्म महासभा की नींव डाली।

(१) नियत समय पर और थोड़े व्यय में सनातन-धर्मी बालक और बालिकाओं का धर्म-संस्कार कराना और उनको दीक्षा दिलाना।

(२) पाठशाला, कथा, व्याख्यान, उपदेशों तथा पुस्तकों और समाचार पत्रों के द्वारा सनातनधर्मानुयायी सब जाति के लोगों में सनातनधर्म की शिक्षा और उपदेश का प्रबन्ध करना।

(३) सनातनधर्म के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में आपस में प्रीति और मेल बढ़ाना।

(४) मन्दिर, मठ, तीर्थ, धर्मशाला आदि धर्मस्थानों का रक्षा और सुप्रबन्ध के उपाय करना।

(५) अनाथ, विधवा और गौ की रक्षा के उपाय करना।

(६) जहाँ और जब आवश्यकता हो सनातनधर्म और समाज के हित की रक्षा करना।

(७) सनातनधर्म के विशेष कार्य के अतिरिक्त हिन्दू जाति के सर्वसाधारण हित के कामो में और सब हिन्दुओं के साथ मिल कर काम करना।

(८) देश में धर्म-सम्बन्धी तितिक्षा बढ़ाना और भिन्न-भिन्न धर्मों के माननेवाले भाइयों में परस्पर प्रीति और सद्भाव बढ़ाना।

सनातनधर्म-महासभा की आवश्यकता बताते हुए मालवीयजी ने निम्नलिखित वक्तव्य भी निकाला।

सनातनधर्मियों से निवेदन

"प्राचीन काल से भारतवर्ष धर्मप्राण देश रहा है। हिन्दू-जाति एक धर्म-प्रधान जाति है। किन्तु कुछ समय से इस देश के आदि-धर्म—सनातन-धर्म—की रक्षा, दीक्षा और प्रचार के लिए यथोचित प्रबन्ध और उद्योग नहीं हो रहा है।

हम देखते हैं कि हमारे ईसाई भाई जगत में अपने धर्म के प्रचार के लिए करोड़ों रुपये व्यय करते हैं और उनमें से सहस्रों भाई और बहिन समुद्र पार से, सहस्रों मील की दूरी से, अपने अपने देश से यहाँ आकर गाँव-गाँव में, पर्वत-पर्वत

पर घूमकर अपने धर्म का प्रचार करते हैं। हज़ारों मौलवी और अन्य मुसलमान भी अपने धर्म के प्रचार के लिए धन और जन से बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं। हिन्दुओं में हमारे आर्य-समाजी भाई, जिनकी संख्या बहुत अल्प है, अपने सिद्धान्तों के अनुसार हिन्दू धर्म के प्रचार और रक्षा का प्रयत्न कर रहे हैं। किन्तु २४ करोड़ में से २३ करोड़ से ऊपर किसी न किसी रूप में सनातन धर्म के माननेवाले हैं। इनकी ओर से इनकी संख्या और प्रभाव के अनुरूप इनके धर्म की रक्षा और प्रचार का तथा इनकी दीक्षा और संस्कार का कोई संगठित प्रबन्ध नहीं हो रहा है।

इस शोचनीय अवस्था में यह सन्तोष की बात है कि पंजाब में हमारे सनातनधर्मी भाइयों ने अपने धर्म-प्रेम और उसकी रक्षा और प्रचार के लिए प्रशंसा के योग्य उत्साह दिखाया है, और चार वर्ष के समय में ही श्रीसनातनधर्म-प्रतिनिधि-सभा पंजाब को एक जीती-जागती संस्था बना कर पंजाब के हिन्दुओं में धर्म के भाव का बहुत संचार किया है। इस समय नई पुरानी मिला कर पंजाब में प्रायः ६५० सनातन-धर्म सभायें हैं और लगभग २०० महावीर दल स्थापित हो चुके हैं। अब तक सनातनधर्म प्रतिनिधिसभा से सम्मिलित १८० संस्कृत पाठशाला, १४० कन्यापाठशालायें, १०० प्रारम्भिक प्राइमरी-पाठशाला, २८ मिडिल स्कूल, ३२ हाई स्कूल, तीन ऋषि-

कुल ब्रह्मचर्याश्रम, एक अँगरेज़ी-कालेज, एक कामर्स-कालेज और ६० अन्त्यजों की पाठशालायें हैं।

दूसरे प्रान्तों में भी इसी प्रकार धर्मसंगठन का काम पूरे उत्साह के साथ होना चाहिए। युक्तप्रदेश, बिहार, उड़िसा और मध्यप्रान्त में ५०० सनातनधर्म सभाएँ स्थापित हो गई हैं। परन्तु उन प्रान्तों के विस्तार और वहाँ की हिन्दू बस्ती को देखते हुए उन सभाओं की संख्या बहुत कम है। उचित है कि वहाँ के हिन्दू इस सम्बन्ध में अपना कर्तव्य समझें और धार्मिक संगठन के काम में उत्साह के साथ भाग लें।

हिन्दू जाति के अभ्युदय के लिए हम सबको हिन्दू सभाओं के द्वारा काम कराना चाहिए। परन्तु कुछ काम ऐसे हैं जो सनातनधर्मियों को स्वयं करने चाहियें। धर्मग्रन्थों की कथा, धर्मोपदेश, धर्म की शिक्षा, नियत समय पर समस्त सनातन-धर्मी बालक और बालिकाओं का धर्म-संस्कार और दीक्षा; मठों, मन्दिरों, तीर्थों आदि की रक्षा तथा प्रबन्ध आदि ऐसे काम हैं जिनको सनातनधर्मी ही कर सकते हैं।

अनाथ बालकों और विधवाओं की रक्षा के लिए विधवा-आश्रम और अनाथालय स्थापित करने का भार विशेष कर उन पर ही है। सनातनधर्म में प्रीति और श्रद्धा रखने वाले अन्त्यज भाइयों की शिक्षा और दीक्षा का प्रबन्ध करने का काम भी सनातनधर्मियों को अपने हाथ में लेना उचित और आवश्यक है। इतने बड़े-बड़े काम सामने होते हुए भी यदि

सनातनधर्मी अपना संगठन प्रतिनिधि-सत्तात्मक रूप से करें तो सनातनधर्मकी बड़ा भारी हानि होगी ।

समय की इन आवश्यकताओं पर दृष्टि रखते हुए यह आवश्यक जान पड़ता है कि भारत भर के सनातनधर्मियों का एक दृढ़ संगठन किया जाय और उनके प्रतिनिधि समय-समय पर किसी एक स्थान पर एकत्र होकर अपना कर्तव्य स्थिर किया करें। इस संकल्प को पूरा करने के उद्देश्य से अखिल-भारतीय श्रीसनातनधर्म महा-सभा को पुष्ट और संगठित करने का प्रस्ताव फिर से किया गया है। मुझे आशा और विश्वास है कि हिन्दू जाति को फिर प्रबल और प्रभावशाली बनाने का, हिन्दुओं का अभ्युदय—इस लोक में सुख, संपत्ति और मान—और निःश्रेयस परलोक में परम सुख और मोक्ष-संपादन करने के लिए अब की बार पूर्ण उत्साह के साथ प्रयत्न किया जायगा और वह पूर्ण रूप से सफल होगा।

सब प्रान्तों के सनातनधर्मियों से निवेदन है कि वे अपने-अपने स्थानों की धर्म-सभाओं को दृढ़ करें और उनको महा-सभा से संबद्ध करें।"

रहीम कवि ने लिखा है:—

दीनहि सब को लखत है, दीन लखत नहिं कोय।
जो रहीम दीनहिं लखत, तो दीनबन्धु सम होय॥

आज यही दशा दलित-जाति की है। भारतवर्ष की उन्नति के मार्ग में दलितोद्धार का प्रश्न एक बड़ा ही जटिल प्रश्न है। महात्मा गांधी के कार्य-क्रम में जो तीन मुख्य कार्य-क्रम हैं, उनमें एक दलितोद्धार भी है। हिन्दू-समाज में दलित जाति का स्थान बहुत नीचा है। दलित जाति हिन्दू-समाज के लिए एक बड़ी कलंक-कालिमा है। जबतक इन दलितों का उद्धार न होगा, जबतक ये ऊपर को न उठाये जायँगे तबतक न हिन्दू-जाति का ही भला हो सकता है और न देश का ही उपकार हो सकता है। जबतक दलित जातियों के उद्धार करने में हम उचित शक्ति नहीं लगावेंगे तबतक उनका उद्धार होना संभव नहीं है। उच्च जाति के हिन्दुओं द्वारा किये गये घोर अत्याचारों को बेचारे अनन्त काल से सहते आये हैं। हम उन्हें कुये पर पानी तक नहीं भरने देते; उन्हें छूने से हमारा धर्म संकट में पड़ जाता है! कैसी समझ है !! एक बार महात्मा गांधी ने लिखा था कि 'जबतक हमारे अन्दर दलित और उच्च का भाव रहेगा, तबतक हम स्वराज्य पाने के अधिकारी नहीं बन सकते।' मनुष्य जाति के इतिहास में दलित जाति का इतिहास बड़ा ही करुणा-पूर्ण है। प्रत्येक सहृदय भारतवासी, विशेषतः आर्य का यह कर्तव्य है कि वह उनका कल्याण करने में दत्तचित्त होकर कार्य करे। आज मैंने, जिस महानुभाव का चरित्र आप के सामने उपस्थित किया है, उनके जीवन का यह एक सबसे

बड़ा लक्ष्य है। उनकी दयामय वृत्ति इन दलित जातियों की दुःखावस्था को देखकर बहुत ही दुःखी होती है। उनकी करुणा-मय दशा उनके हृदय को पिघला देती है जिससे वे उनकी भलाई के लिए बहुत कुछ करते हुए पाये जाते हैं। दलितों को ऊपर उठाने के लिये आपको नामधारी सनातनी पण्डित लोग बहुत कुछ भला-बुरा भी कहते हैं; पर आप उनकी बातों की ज़रा भी परवाह न करके दलितों की दिनरात भलाई ही सोचा करते हैं। उनकी अवस्था को सुधारने के लिए जगह-जगह पर उन्हें इकट्ठा करते और धर्मोपदेश देते हैं, उनको दीक्षित करते हैं। उनको और मनुष्यों की तरह योग्य होने के लिए अनेक प्रकार का रास्ता बताते हैं। वास्तव में किसी महात्मा के जीवन की इसी में सार्थकता है कि वे दुखियों के दुःख को दूर करने का प्रयत्न करें। इसीलिए उनकी सृष्टि होती है। दुष्ट लोग तो उन्हें हर प्रकार से विघ्न-बाधा पहुँचावेंगे ही; क्योंकि यदि वे ऐसा न करें तो उपाधि छिन जायगी, पर सज्जन विघ्न-बाधाओं का ख़याल न करते हुए सर्वदा परो-पकार में तल्लीन रहते हैं। मालवीयजी के ऊपर अनेकानेक कार्यों का भार है, पर तो भी इस भार को उन्होंने सहर्ष उठाया है।

धर्म के विषय में आपके विचार बहुत ही अच्छे हैं, आप अन्य धर्मावलम्बियों के साथ प्रेम का बर्ताव रखना चाहते हैं। आप सामाजिक कुरीतियों (जैसे बाल विवाह, छुआ-

छूत आदि) के कट्टर विरोधी हैं। द्विजातियों को ही नहीं बल्कि शूद्रों को भी आपके मतानुसार ओंकार मन्त्र ग्रहण करने का अधिकार है। (ॐ) सहित मन्त्रों की उनको दीक्षा दी जा सकती है। इसकी पुष्टि में आपने मंत्र-दीक्षा नाम की एक पुस्तक लिखी है। उसमें सब शास्त्रों और पुराणों से प्रमाण इकट्ठे कर इस बात के दिखाने का प्रयत्न किया है कि उनको भी मन्त्र-दीक्षा का अधिकार है। परन्तु जिस प्रकार आप राजनैतिक विचारों में 'नरमदल' में है उसी प्रकार धार्मिक विचार में भी न तो आप आर्यसमाजियों के मत के समर्थक हैं और न लकीर के फ़कीर सनातनधर्मियों के। धार्मिक मंडल में भी आप दोनों के बीच का रास्ता पसन्द करते हैं।

अब मैं मालवीयजी के एक धर्मोपदेश को उद्धृत कर इस बात को समाप्त करता हूँ।

कलियुग में एकता ही शक्ति है

परमेश्वर को प्रणाम कर सब प्राणियों के उपकार के लिए, बुराई करनेवालों को दबाने और दण्ड देने के लिए, धर्मस्थापन के लिए और धर्म के अनुसार सङ्गठन कर गाँव-गाँव में सभा करनी चाहिए। गाँव-गाँव में कथा बिठानी चाहिए। गाँव-गाँव में पाठशाला और अखाड़ा खोलना चाहिए; और पर्व-पर्व पर मिल कर महोत्सव मनाना चाहिए।

"सब भाइयों को मिलकर अनाथों की, विधवाओं की, मन्दिरों की और गौ माता की रक्षा करनी चाहिए और इन सब कामों के लिये दान देना चाहिए। स्त्रियों का सन्मान करना चाहिए और दुखियों पर दया करनी चाहिए।

उन जीवों को नहीं मारना चाहिए जो किसी पर चोट नहीं करते। मारना उनको चाहिए जो आततायी हों, अर्थात् जो स्त्रियों पर या किसी दूसरे के धन या प्राण पर वार करते हों या जो किसी के घर में आग लगाते हों। यदि ऐसे लोगों को मारे बिना अपना या दूसरों का प्राण या धन न बच सके तो उनको मारना धर्म है।

स्त्रियों और पुरुषों को भी निडरपन, सचाई, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, धीरज और क्षमा का अमृत के समान सदा सेवन करना चाहिए।

इस बात को कभी न भूलना चाहिए कि भले कर्मों का फल भला और बुरे कर्मों का फल बुरा होता है और कर्मों के अनुसार ही प्राणी को बार-बार जन्म लेना पड़ता है या मोक्ष मिलता है।

घट-घट में बसनेवाले भगवान् विष्णु का, सर्वव्यापी ईश्वर का सुमिरन सदा करना चाहिए, जिनके समान दूसरा कोई नहीं—जो कि अद्वितीय हैं और दुःख और पाप के हरनेवाले हैं। जो सब पवित्र वस्तुओं से अधिक पवित्र, जो सब मंगल कामों के मंगलस्वरूप हैं, जो सब देवताओं के देवता हैं और

जो समस्त संसार के आदि सनातन, अज, अविनाशी और पिता हैं।

सनातनधर्मी, आर्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी, सिक्ख, जैन और बौद्ध आदि सब हिन्दुओं को चाहिए कि अपने-अपने विशेष धर्म का पालन करते हुए एक-दूसरे के साथ प्रेम और आदर का व्यवहार करें।

अपने विश्वास में दृढ़ता, (दूसरे की निन्दा का त्याग, मतभेद में चाहे वह धर्म-सम्बन्धी हो वा लोक-सम्बन्धी) सहनशीलता और प्राणिमात्र से मित्रता रखनी चाहिए।

मनुष्य को चाहिए कि जिस काम को वह नहीं चाहता है कि कोई दूसरा उसके प्रति करे, उस काम को वह भी किसी दूसरे के प्रति न करे। क्योंकि वह जानता है कि यदि उसके साथ कोई ऐसी बात करता है जो उसको प्रिय नहीं है, तो उसको कैसी पीड़ा पहुँचती है।

मनुष्य को चाहिए कि न कोई किसी से डरे, न किसी को डर पहुँचावे। श्रीमद्भगवद्गीता के उपदेश के अनुसार आर्य अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों की वृत्ति में दृढ़ रहते हुए ऐसा जीवन व्यतीत करे जैसा सज्जनों को व्यतीत करना चाहिए।

हरएक को उचित है कि वह यह कामना करे कि सब लोग सुखी रहें, सब नीरोग रहें, सब का भला हो, कोई दुःख न पावे, प्राणियों के दुःख के दूर करने में तत्पर हो। दया बलवानों

की शोभा है और धर्म के अनुसार चलनेवालों को कभी दया का त्याग न करना चाहिए।

देश की उन्नति के कामों में देशभक्त पारसी, मुसलमान, ईसाई, यहूदियों के साथ मिलकर भी काम करना चाहिए।

यह भारतवर्ष जो हिन्दुस्तान के नाम से प्रसिद्ध है—बड़ा पवित्र देश है। धन, धर्म और सुख का देनेवाला यह देश सब देशों से उत्तम है।

देवता लोग भी यह गीत गाते हैं कि वे लोग धन्य हैं जिनका जन्म इस भारत-भूमि में होता है, जिसमें जन्म लेकर मनुष्य स्वर्ग-सुख और मोक्ष दोनों को पा सकता है।

यह हमारी मातृ-भूमि है, यह हमारी पितृ-भूमि है। जो लोग सुजन्मा हैं—जिनके जीवन बहुत अच्छे हुए हैं, राम, कृष्ण, बुद्ध आदि महापुरुषों के, महात्माओं के, आचार्यों के, ब्रह्मर्षियों और राजर्षियों के, गुरुओं के, धर्मवीरों के, शूरवीरों के, दानवीरों के, स्वतंत्रता के प्रेमी देश-भक्तों के उज्ज्वल कामों की यह कर्म-भूमि है। इस देश में हमको परमभक्ति करनी चाहिए और यथा शक्ति तन, मन-धन से इसकी सेवा करनी चाहिए।

जिस धर्म में परमात्मा ने गुण और कर्म के विभाग से ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण उपजाये और जिसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों के साधन में सहायक मनुष्य का जीवन पवित्र बनानेवाले ब्रह्मचर्य, गृहस्थ वानप्रस्थ और सन्न्यास से चार आश्रम स्थापित हैं।

सब धर्मों से उत्तम इसी धर्म को हिन्दू धर्म कहते हैं। जो लोग सारे संसार का उपकार चाहते हैं उनको उचित है कि इस धर्म की रक्षा और इसका प्रचार करें।

पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि ये वाक्य किसी परमोदार हृदय से निकले हैं। मैं तो यह समझता हूँ कि मालवीयजी दूसरे धर्मों का समुचित आदर करते हुए अपने धर्म पर मिटना जानते हैं।

मालवीयजी के शिक्षा-विषयक विचार

"भारतवर्ष की भारतीयता ही एक ऐसी वस्तु है जो कि आज सहस्रों वर्ष से देश की रक्षा कर रही है। जब कि संसार के समस्त प्राचीन देश, जैसे यूनान, मिश्र, बेबीलोन, रोम आदि एक-एक कर इस संसार-रूपी नाटक-मंच पर तरह-तरह के अभिनय मचाकर चलते बने। आज उनकी स्मृति मात्र, सो भी पुस्तकों में ही, रह गई है। पर हमारा भारत—सैकड़ों विपत्तियाँ आईं, आततायियों ने आकर नगरों को लूटा, भव्य से भव्य महलों को फोड़-फाड़ कर रसातल में मिलाया, लाखों नर-हत्यायें कीं, धर्म पर अगणित अत्याचार किये, परन्तु हमारे भारत-का अस्तित्व न मिटा। वह समुद्र की भाँति स्थिर रहा। सिर्फ़ लहरें आईं और चली गईं। आज भी जब कि वह गुलामी के भीषण जाल में फँसा है संसार का एक सर्वश्रेष्ठ देश कहलाता है। जो आदर्श हमारा आज से हज़ारों वर्ष

पूर्व था वही आज भी है। उन ऋषि और महर्षियों के चलाये हुए धर्म को, उनके आदर्श को जो कि आज से सहस्रों वर्ष पूर्व हुए थे गाँव-गाँव में, घर-घर में—यही नहीं, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति में थोड़ा-बहुत देख सकते हैं। यदि हम इसके कारण का अध्ययन करें तो कहना होगा कि आज जो कुछ भारतवर्ष का प्राचीन गौरव बचा हुआ है वह हमारे पूर्वजों की शिक्षा के कारण ही बचा हुआ है। वह उन श्रुति और स्मृति के ग्रन्थों के कारण बचा हुआ है, जिनको हम प्रतिदिन हर बात पर उद्धृत करते रहते हैं। आज जो हम अवनति को प्राप्त हुए हैं वह इसीलिए हुए हैं कि हमने अपनी पढ़ाई-लिखाई छोड़ दी, हम अपने पूर्वजों की शिक्षा को छोड़कर एक अन्य और अयोग्य देश की शिक्षा की नक़ल करने लगे हैं। हम उस शिक्षा की नक़ल करने लगे जो कि हमें नाश करने के लिए ही चलाई गई थी। यदि हमें भारतवर्ष को पुनः ऊपर उठाना है, यदि हमें अपने खोये हुए अस्तित्व को पुनः किसी रूप में क़ायम करना है तो हमें अपनी शिक्षा-दीक्षा के लिए अपने प्राचीन पथ का अवलोकन करना पड़ेगा।'' यही विचार लेकर हमारे चरितनायक श्रीमालवीयजी शिक्षा-क्षेत्र में उतरे।

"यूरप में महापरिवर्त्तन हुआ जिसके कारण इङ्गलैण्ड, जर्मनी, फ्रांस आदि देश सभ्य बन गये। यूनान और रोम की विद्या ने उन्हें अंधकार से निकाल कर प्रकाश में डाला। इसी तरह वर्तमान अंधकार से प्रकाश में आने के लिए भारतवर्ष में भी

महापरिवर्तन करना होगा अर्थात् अपनी प्राचीन शिक्षाओं का प्रचार करना होगा । जबतक अपने पूर्वजों के इतिहास, उनकी शिक्षा-प्रणाली और उनके ज्ञान-वैभव आदि का हम अध्ययन नहीं करेंगे तबतक भारतवर्ष की उन्नति कदापि नहीं हो सकती—किसी भी ऐसी शिक्षा से भारतवर्ष का भला नहीं हो सकता जबतक कि उस शिक्षा के अन्तर्गत प्राचीन भाषा, साहित्य तथा विज्ञान के सिखाने का क्रम न रखा जाय । वर्तमान भारतवर्ष की कोई भी साहित्यिक भाषा तबतक अपने उच्च पद की अधिकारिणी नहीं बन सकती जबतक कि उसमें संस्कृत-साहित्य का पूरा पूरा समावेश न हो । जिन्हें संस्कृत-साहित्य का कुछ भी ज्ञान है, वे इस बात को मानने के लिए तैयार हैं कि जो सदाचार और नीति का शिक्षा इस भाषा में है, वह संसार की अन्य भाषाओं में नहीं है । हिन्दुस्तान के ही नहीं, बल्कि पाश्चात्य विद्वान् भी* हमारे

*प्रोफ़ेसर मैक्समुलर कहते हैं "उनके लिए जो कि हमारे पीछे होने वाले हैं संस्कृत-साहित्य में अन्वेषण करने के लिए काफ़ी काम है, क्योंकि अबतक जो कुछ किया गया है उसे सिर्फ़ श्रीगणेश ही समझना चाहिए भारतीय इतिहास, साहित्य और दर्शन आदि विषयों का अभी तक हम लोगों को केवल आरंभिक ज्ञान मिला है । इस सम्बन्ध में हम उन बालकों की तरह हैं जो कि खेलते तो हैं समुद्र के किनारे पर अभी तक छोटे-छोटे रोड़े ही पहचानते और उठाते हैं । हमारे सामने भारतीय ज्ञान का अथाह समुद्र पड़ा है और सहज में उसको थाह पाना एक प्रकार से कठिन है ।

इस मत से सहमत हैं। वे पाश्चात्य विद्वान् जो थोड़ा सा भी संस्कृत का ज्ञान रखते हैं; इस बात को स्वीकार करते हैं कि लैटिन और ग्रीक भाषाओं के साहित्य में संस्कृत-साहित्य से बहुत कुछ लिया गया है।" महामना मालवीयजी का यह विचार बहुत पूर्व से था और अब भी वे जो कुछ कर रहे हैं इसी के अनुसार कर रहे हैं, पर समय के उलट-फेर और देश की ग़ुलामी के कारण पूरा-पूरा कार्य करने में अभी तक सफलीभूत नहीं हुए हैं। इससे यह कदापि न समझना चाहिए कि मालवीयजी पुरानी लकीर के फ़क़ीर हैं। वे अपने पुराने मकान को आजकल की नई-नई वस्तुओं से सजाना चाहते हैं, उस पर नवीनता की कलई चढ़ा कर सका पुनरुद्धार करना चाहते हैं। यह तभी हो सकता है जब कि मकान से प्रेम करनेवालों की संख्या अधिक हो। वे नवीनता के गुण को छोड़ना नहीं चाहते; बल्कि उससे भी कुछ न कुछ फ़ायदा ही उठाना चाहते हैं। वर्तमान काल की सर्वव्यापी भाषा अँग्रेज़ी का महत्त्व बताते हुए एक स्थान पर आप कहते हैं कि "मैं इस बात को साफ़ तौर से मानने को लाचार हूँ कि अँग्रेज़ी भाषा के ज्ञान ने हमें बहुत कुछ फ़ायदा पहुँचाया है, इसने भारतवर्ष की विभिन्न जातियों को एकता के सूत्रमें पिरोया है, उनमें एकता का प्रचार करने में पूर्ण सहायक हुई है। इसने राष्ट्रीय भाव की जागृति में सहायता दी है। मैं इस बात को भी मानने के लिए बद्ध हूँ कि संसार की बोल-

चाल की भाषा होने के लिए यह अँग्रेज़ी भाषा अग्रसर हो रही है। मैं हर एक शिक्षित भारतीय से जो किसी बड़े विश्व-विद्यालय वा किसी विदेश के विद्यालय में जाकर ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, कहना चाहता हूँ कि वह अँग्रेज़ी तथा फ्रेञ्च भाषा अवश्य सीखे।" अँग्रेज़ी भाषा के महत्त्व को मानते हुए भी मालवीयजी यह नहीं चाहते कि भारतवर्ष में विदेशी भाषा का बोलबाला हो। उसी भाषण में वे आगे चल कर कहते हैं, "हम लोग अँग्रेज़ी पढ़ने के क्रम को उसी हद तक उत्साहित करें जहाँ तक कि यह भारतवर्ष की भाषाओं से आगे न बढ़ कर दूसरे ही दर्जे तक रुकी रहे। हमारी शिक्षा-प्रणाली के अन्दर इस भाषा को कभी वह प्रधानता न मिलनी-चाहिए। जो स्थान आज भारतवर्ष में तथा यहाँ की शिक्षा-प्रणाली में अँग्रेज़ी ने प्राप्त किया है। आज हम उस हानि के मूल्य को आँक तक नहीं सकते जो हमें अपनी भाषा का निरादर करने से हुई है। हमें इस हानि को रोकने के लिए शीघ्रातिशीघ्र प्रयत्न करना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति कहता हो कि हमारी भाषा इतनी परिमार्जित नहीं है कि वह व्यवहार के लिए उपयुक्त समझी जाय या उसे शिक्षा का माध्यम बनाया जाय, क्योंकि वह अँग्रेज़ी भाषा की समानता नहीं कर सकती तो ऐसे मनुष्य को मैं स्मरण दिलाना चाहता हूँ कि अभी गत शताब्दि के कुछ ही पूर्व वह अँग्रेज़ी भाषा जिस पर कि प्रत्येक अँग्रेज़ गौरवान्वित

होता है .खुद इङ्गलैण्ड में ही बहिष्कृत थी। चौदहवीं शताब्दि के मध्य तक इङ्गलैण्ड में फ्रेञ्च भाषा की शिक्षा दी जाती थी। यह तो अभी पन्द्रहवीं शताब्दि के आरम्भ के कुछ ही पूर्व वहाँ अँग्रेज़ी शिक्षा का प्रचार बढ़ा है।*

एक दूसरे स्थान* पर आप लिखते हैं कि यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि बहुत कम भारतवासी इस विदेशी भाषा की शिक्षा से लाभ उठा सकते हैं। भारतवर्ष की जन-संख्या में हज़ार पीछे ६'८ मनुष्य अँग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त हैं। इस संख्या में उन अँग्रेज़ों और एँग्लो हिन्दुस्तानियों की भी संख्या शामिल है जो कि भारतवर्ष में बस गये हैं। इन शिक्षितों में कुछ तो नौकरी कर रहे हैं और कुछ थोड़े से लोग अपना-अपना घर का काम कर रहे हैं, लेकिन जिस ढंग से अँग्रेज़ी की शिक्षा दी जा रही है उस ढंग से बहुत कम आदमी शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। जो लोग ऐसी शिक्षा किसी प्रकार ग्रहण भी करते हैं, वे जनता के ऊपर भार-स्वरूप हैं, क्योंकि विदेशी भाषा की शिक्षा प्राप्त करने में उनका अमूल्य समय और धन दोनों ही काफ़ी मात्रा में बरबाद होते

---

* Short History of the English People by Green.

* A Proposed Prorspectus of the Hindu University II Edition 1906 PP 17

हैं। पन्द्रह-पन्द्रह बीस-बीस वर्ष तक अँग्रेज़ी सीखने पर लोगों को इतनी बुद्धि नहीं प्राप्त होती जिससे कि वे अँग्रेज़ी में अपने भावों को व्यक्त कर सकें। भारतवर्ष के लोग जो सर्वदा नई-नई बातों का ही अनुसन्धान किया करते थे आज वे ही विदेशी साहित्य-विज्ञान-शास्त्र की नक़ल करते हैं। पर मेरा तो कहना यह है कि नवीन विचारों के उत्पादन में जितनी अपनी मातृ-भाषा सहायक हो सकती है उतनी विदेशी भाषा कदापि नहीं हो सकती। विदेश की भाषा उनके लिए भले ही अच्छी हो जो इतने योग्य हैं कि विदेशी भाषा का ज्ञान सुगमता से प्राप्त कर सकते हैं, उसके लिए काफ़ी धन और समय लगा सकते हैं; पर यह कहना कि यह भाषा समस्त जनता को लाभ पहुँचा सकती है तथा नवीन विचारों की सृष्टि करने में सहायक हो सकती है बिलकुल ग़लत है। अँग्रेज़ी शिक्षा का प्रचार नौकरी के लालच से तथा अपने निज के काम के लिए पढ़ने के कारण होता रहेगा.........लेकिन भारतवर्ष के निखिल जन-समुदाय का भला देशी भाषा की शिक्षा और जैसा कि पहले कहा जा चुका है, देशी भाषा को ऊँचे पर चढ़ानेवाली संस्कृत-विद्या के प्रचार से ही होगा।''—

मालवीयजी अँग्रेज़ी शिक्षा ही नहीं, बल्कि आजकल की प्रचलित शिक्षा-प्रणाली को ही दूषित बताते हैं। देखिये, अपने उसी भाषण में आप कहते हैं—"वर्तमान शिक्षा-प्रणाली राष्ट्रीय तथा नैतिक दोनों प्रकार की उन्नति के लिए घातक

सिद्ध हो चुकी है । हम लोग अन्धों की तरह उस शिक्षा-प्रणाली की नक़ल कर रहे हैं जो कि दूसरों के लिए बनाई गई थी तथा जिसे उन लोगों ने बहुत दिन हुए बहिष्कार कर दिया । इस शिक्षा का पूरा-पूरा परिणाम हम अपने देश के शिक्षित नारी-समाज को देखकर मालूम कर कर सकते हैं। उन पर इस शिक्षा की बड़ी भारी छाप पड़ी है।"

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के दोषों को दिखाते हुए शिक्षितों की बेकारी के प्रश्न पर आप उसी भाषण में कहते हैं कि "हमारी शिक्षा-संस्थाओं पर जो सबसे बड़ा दोष मढ़ा जाता है वह यह है कि हम लोग प्रतिवर्ष इतने शिक्षितों को सनद देकर देश में भर रहे हैं कि उन्हें कोई काम तक नहीं मिलता। इसका साफ़-साफ़ कारण तो यह है कि हमारी शिक्षा-संस्थायें तो उस प्रकार की शिक्षा देती ही नहीं जिससे कि शिक्षार्थी भविष्य में अपनी जीविका चलाने योग्य बन सकें। साधारण-तया पढ़नेवाले लोग जो साहित्यिक विषय (आर्ट) वैज्ञानिक विषय (सायन्स) लेकर बी० ए० पास करते हैं, वे अध्यापकी तथा शासन-बिभाग (कचहरियों) की ओर दौड़ते हैं। लेकिन स्कूल और कॉलेज तथा सार्वजनिक कार्यालय कहाँ तक लोगों को शरण देसकते हैं। देश में डॉक्टरी विभाग का उतना प्रचार नहीं हुआ है जितना कि होना चाहिए। अतः उस विभाग में पहले से ही जगह नहीं है। विभिन्न विषयों की शिक्षा का प्रबन्ध न होने से लोग लाचार होकर क़ानून पढ़ने की ओर

झुकते हैं; पर वहाँ भी उन्हें निराशा का द्वार देखना पड़ता है। बेकारी को दूर करने का एक ही रास्ता है वह यह कि व्यापार (कामर्स) ,गृहस्थी, सायन्स (रसायन विद्या), इञ्जीनियरिंग (कलपुर्ज़ों का ज्ञान) तथा अन्य प्रकार की शिल्पकला-विषयक-शिक्षाओं का प्रचार किया जाय। शिक्षा इस प्रकार की दी जाय कि लोगों में विद्यार्थियों की माँग बढ़े और व्यवस्था ऐसी बने कि ऐसे लोगों की आवश्यकता अधिक पड़े। सरकार और शिक्षा-संस्थाओं को इस विषय में परस्पर सहयोग-समिति स्थापित करके ही काम करना होगा जिससे कि उन्हें (छात्रों को) ऐसी योग्य शिक्षा देने तथा अपने जीवन को आनन्दपूर्वक यापन करनेका रास्ता दिखलाया जा सके।"

एक समय जापान में नवयुवक शिक्षार्थियों की संख्या बहुत बढ़ गई। जब उन्हें कोई काम न मिला तो वे क़ानून पढ़ने लगे। वहाँ का वकालतखाना कुछ ही दिनों ठसाठस भर गया। तब बहुत जल्द कामर्स-विभाग खोला गया, जिसमें बहुत से लोग प्रविष्ट हुए, थोड़े ही दिनों में अपने देश तथा अपने को काफ़ी काम पहुँचाया। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली की यही सबसे बड़ी ख़राबी है और यह सोच कर बहुत ही दुःख होता है कि वह नवयुवक जो पन्द्रह-बीस वर्ष तक अँग्रेज़ी पढ़ता है, सहस्रों रुपये पर पानी फेरता है और वह बाद को इतना भी

पैसा प्राप्त नहीं कर सकता, जिससे कि वह अपने बाल-बच्चों के पेट भरने के लिए भी कुछ प्राप्त कर सके ।

यह प्रणाली बहुत ही त्रुटि-पूर्ण है। इसमें बहुत हेर-फेर की आवश्यकता है। बालकों की शिक्षा उस समय आरंभ करनी चाहिए जब कि वे अपनी माता के गर्भ में आते हैं। इङ्गलिस्तान.............में माताओं को शिक्षा दी जाती है, पिता को शिक्षा दी जाती है, पड़ोसी शिक्षित रहते हैं और साधारणतया सभी शिक्षा से लाभ उठाते हैं। शिक्षा-संस्थायें साधनों को जुटाती हैं। हर एक के साथ में पुस्तक और अख़बार रहता है। शिक्षा उनके जीवन का एक आवश्यकीय अंग होगया है: ....
इसी तरह यदि भारतवर्ष में भी संयोग मिले, साधन उपस्थित हों, तो हमें पूर्ण आशा है कि भारतवर्ष के नवयुवक किसी बात में भी अन्य देश के नवयुवकों से पीछे न रहेंगे।''

मालवीयजी-द्वारा शिक्षा-प्रचार

हिन्दू-धर्म-शास्त्रों में विद्या-दान का बड़ा ही महत्त्व लिखा है। मनुस्मृति अध्याय ४ में विद्या-दान का जो विशद महत्त्व दर्शाया गया है उसे मैं यहाँ अंकित करता हूँ।

जल, अन्न, गौ, पृथ्वी, वस्त्र, तिल, सुवर्ण और घृत आदि सब दानों से, विद्या-दान अति श्रेष्ठ है। अन्नदान के समान कोई दान नहीं; पर विद्या-दान उससे भी श्रेष्ठ है। अन्नदान से

जो प्रीति उत्पन्न होती है वह घड़ी या दो घड़ी के लिए रहती है; परन्तु विद्या-दान से जो संतोष होता है वह यावज्जीवन रहता है।

देश-सेवा का सबसे बड़ा अंग शिक्षा-प्रचार ही है; क्योंकि जिस देश की जनता पढ़ी-लिखी न होगी वह क्या अपने देश के प्रति प्रेम कर सकेगी ? वह तो 'देश-प्रेम' समझेगी ही नहीं। किसी जाति की उन्नति के लिए शिक्षा उतनी ही आवश्यक है जितना कि सभी लोग समझते हैं। मालवीयजी को इसका ध्यान शिक्षा-काल से ही था। कुछ आगे चल कर प्रयाग में हिन्दू बोर्डिङ्ग हाउस की स्थापना तथा प्रयाग-साहित्यिक सभा की नींव डालना आप के प्रारम्भिक शिक्षा-प्रचार-प्रेम के उदाहरण हैं। उस समय से ही आपके हृदय में एक अखिल भारतवर्षीय-विश्वविद्यालय की स्थापना की लगन लग चुकी थी। तब से लेकर सन् १९११ तक आपकी यह इच्छा उत्तरोत्तर कार्यरूप में परिणत होने के लिये बढ़ती ही रही। आपकी इच्छा एक ऐसा महाविद्यालय स्थापित करने की थी जो कि समस्त संसार के लिए महा-केन्द्र बने, जहाँ धार्मिक तथा साहित्यिक शिक्षा के साथ साथ शिल्पकला की शिक्षा का भी विशेष प्रबन्ध हो तथा जहाँ के विद्यार्थी आचारादि सत्गुणों में भी श्रेष्ठ होवें। आज हम काशी की पुण्य नगरी में मालवीयजी की महत्वाकांक्षा का सुन्दर फल देख सकते हैं। आज वह काशी का ही

नहीं, समस्त भारत का एक महा शिक्षा-केन्द्र है और आशा की जाती है कि धीरे-धीरे उसका प्रभाव सारे संसार पर पड़ेगा। यों तो काशी स्वयं ही एक वृहत् विद्या-पीठ है; पर हिन्दू-विश्वविद्यालय से उसकी शोभा और प्रतिष्ठा उसी प्रकार बढ़ गई है जैसे नग से अँगूठी की शोभा बढ़ती है।

हिन्दू विश्व-विद्यालय मालवीयजी की अक्षय कीर्ति होगई है। प्रत्येक शिक्षित नर-नारी के लिए काशी-यात्रा करते समय हिन्दू-विश्व-विद्यालय का देखना आवश्यक हो गया है। जो लोग उसके दर्शनों से वंचित हो अपने देश को लौट जाते हैं उनसे कहा जाता है कि "तुमने यदि काशी जाकर हिन्दू-विश्व-विद्यालय नहीं देखा तो कुछ नहीं देखा।"

जो कोई विश्व-विद्यालय को देखता है, वह बिना आश्चर्यान्वित हुए नहीं रहता। मालवीयजी के नाम पर उसके अन्तःकरण से धन्य !!! शब्द निकल ही पड़ता है। निर्जीव से निर्जीव मनुष्य भी जो कि यह भी नहीं जानता कि "काला अक्षर भैंस बराबर होता है" या कैसा वह भी विश्व-विद्यालय का विस्तार देख कर एक क्षण के लिए अवाक् होजाता है। जन साधारण तो तारीफ़ का पुल बाँधते हुए पाये ही जाते हैं; परन्तु बड़े से बड़ा मनुष्य भी हिन्दू-विश्व-विद्यालय को देख कर कुछ न कुछ कह ही बैठता है।

नर-श्रेष्ठ महात्मा गांधी का नाम भला किससे छिपा होगा। उन्होंने तेंतीस करोड़ मनुष्यों के हृदय में वह सर्वोच्च स्थान

प्राप्त कर लिया है जो कि किसी के सौभाग्य में प्राप्त नहीं हुआ तथा आज जिसकी इतनी शक्ति है कि सारा संसार उनकी ओर श्रद्धा की दृष्टि से देखता है। वे भी जब हिन्दू-विश्व-विद्यालय के विशाल क्षेत्र को देखते हैं तो मालवीयजी की तारीफ़ किये बिना नहीं रहते। यों तो वे कई बार विश्व-विद्यालय में आचुके हैं; पर सन् १६२६ ई० के सितम्बर में जब वे आये थे तब उन्होंने विद्यार्थियों को उपदेश देते हुए यह कहा थाः—

"हिन्दू-विश्व-विद्यालय पूज्य मालवीयजी की बड़ी कृति है। उन्होंने भारत की जैसी सेवा की है वह सभी को मालूम है। उनकी सेवा का निचोड़ हिन्दू-विश्व-विद्यालय है। पूज्य मालवीयजी और मुझमें मतभेद है। दो भाइयों में जिस तरह मतभेद हो सकता है उसी तरह हम दोनों में भी है। लेकिन इस मतभेद के कारण उनकी सेवा से कोई इन्कार नहीं कर सकता। मालवीयजी की सफलता का नाप हिन्दू-विश्व-विद्यालय की सफलता से किया जा सकता है और हिन्दू-विश्व-विद्यालय की सफलता का नाप इस बात से किया जा सकता है कि विद्यार्थियों ने कहाँ तक अपने चरित्र का संगठन किया है, भारत की उन्नति में कहाँ तक भाग लिया है, उनमें धर्म-भाव कहाँ तक बढ़ा है।"

यद्यपि स्वयं मालवीयजी के कथनानुसार हिन्दू-विश्व-विद्यालय में अभी बहुत कमी है; तो भी, आज तक जितना कुछ

हो सका है उतना ही आश्चर्यमय प्रतीत होता है। विश्व-विद्यालय के अन्दर आर्ट्स (कला) कालेज, साइन्स (विज्ञान) कालेज, इञ्जिनियरिङ्ग-कालेज इत्यादि संस्थायें हैं। यों तो सभी कालेज की इमारतें सुन्दर हैं। लेकिन-आर्ट्स-कालेज बड़ा ही मनोहर मालूम होता है। छत पर चले जाने से सारा विश्व-विद्यालय दृष्टिगोचर होता है। यह शोभा सायंकाल के चार बजे और भी निराली हो जाती है। उत्तर की ओर मुक्तिदायिनी काशी, पूरब की ओर पुण्य-सलिला भागीरथी, पश्चिम की ओर देहात तथा दक्षिण की ओर बिन्ध्याचल की पहाड़ियाँ—इन को देख कर हृदय गद्गद हो जाता है। पुण्य-सलिला भागीरथी के देखने से महाराज भगीरथ का स्मरण हो आता है। संसार की भलाई के लिए हमारे देश के नवनिहालों ने कितना कष्ट उठा कर अपने कार्य में सफलता प्राप्त की है। गंगा का दृश्य हिन्दू-विश्व-विद्यालय के छात्रों के लिए एक जीता-जागता उदाहरण है, जिसे वे अपने सामने आदर्श रूप रख कर संसार में प्रेम की नदी बहा सकते हैं। उत्तर की ओर पवित्र काशीपुरी है जिसकी महिमा महाकवियों ने गाई है।

मुक्ति जन्म महि जानि, ज्ञान खानि अघहानिकर।
जहँ बस शम्भु भवानि, सो काशी सेइय कस न॥

उत्तर की ओर वही काशी है जहाँ कि कभी विद्या का अगाध भण्डार था। आर्य-सभ्यता की वह विख्यात पीठ ही

थी। वही काशी आज क्या से क्या हो गई। हिन्दू-विश्व-विद्यालय के छात्रों का यह परम कर्तव्य होगा कि वे अपने योग्य आचरणों द्वारा काशी को कलङ्क-कालिमा को हटायें और उसके पूर्व गौरव को बनायें। पश्चिम की ओर देहात हैं। उससे यह सूचना मिलती है कि पढ़िये-लिखिये हज़ार पर आपकी गुज़र खेती से ही होने वाली है, देहात में ही आपकी सभ्यता ने उन्नति की है, वही भारतवर्ष का सब कुछ है।

दक्षिण की ओर बिन्ध्याचल की छोटी-छोटी श्रेणी प्राकृतिक शोभा का आगार है। आज हिन्दू-विश्व-विद्यालय एक महान् विद्या-स्थल है। सोलह वर्ष पूर्व किसे यह ज्ञात था कि जिस स्थान पर जौ, गेहूँ और बाजरे की खेती होती है वहाँ ज्ञान-विज्ञान की खेती होगी और उस खेत में काम करनेवाले महामहोपाध्याय तथा डाक्टर होंगे। हिन्दू-विश्व-विद्यालय के छात्रावासों की छटा भी निराली है। छात्रावास के सामने एक सुन्दर सड़क है। उसके दोनों ओर वृक्ष लगे हैं। उनकी हरियाली बहुत अच्छी मालूम होती है। वहाँ की जलवायु भी अच्छी है। विद्युत्-प्रकाश होते ही सारा विश्व-विद्यालय एक सुन्दर नगर सा दिखाई देने लगता है। यह नगर मालवीयजी के विद्या-प्रेम और उद्यम का मूर्तिमान् फल है।

---

*

हिन्दू-विश्व-विद्यालय

प्रसादद्विश्वनाथस्य काश्यां भागीरथे तटे ।
विश्व विद्यालयः श्रेष्ठो हिन्दुनां मानवर्धनः ॥
हिन्दू राज्याधिपतिभिर्धनिकैर्धार्मिकैस्तथा ।
मिलित्वा स्थापिताः सद्भिर्विद्याधर्म विवृद्धये ॥
यमवेदाः सवेदांगाः धर्मशास्त्रं च पावनम् ।
इतिहासः पुराणश्च मिमांसा न्याय विस्तरः ॥
साख्यं योगौ च वेदान्त आयुर्वेदः सुखावहः ।
गांधर्ववेदो मधुरो धनुर्वेदश्च नूतनः ॥
आङ्गलं दण्ड विधानश्च दायभागादि संयुतम् ।
पाश्चात्या विविधाः विद्यास्तथा लोकहिताः कलाः ॥
पाठ्यन्ते विधिवत् प्रेम्णा विज्ञानानि बहूनि च ।
साहाय्यार्थं च छात्राणां दीयन्ते वृत्तयस्तथा ॥
सर्व प्रान्तः समायाताश्छात्राः विद्याभिलाषिणः ।
वसन्ति सुखिनो यत्र पुरा गुरुकुले यथा ॥
नित्यं निवेष्यते यत्र व्यायामः शक्ति वर्धनः ।
व्याख्यानैश्च कथाभिश्च धर्मो यत्रोपदिश्यते ॥
पोष्यः संवर्धनीयश्च हिन्दूनामाभिमानिभिः ।
स्त्रीभिश्च पुरुषैस्सवैंः प्रेम्णा दानेन सूक्तिभिः ॥

—मदनमोहन मालवीयः

काशी-हिन्दू-विश्व-विद्यालय की स्थापना भारतीय विधान की १६१५ ईसवी की १५वीं धारा के अनुसार हुई है, जिसको व्यवस्थापक सभा ने अक्टूबर सन् १६१५ ई० को पास किया है। इस धारा के अनुसार कार्य्य १ अप्रैल सन् १६१६ ईसवी को आरंभ किया गया। (नोटीफिकेशन नं० २२५ तारीख २३ मार्च सन् १६१६ ईसवी गवर्नमेन्ट आफ़ इन्डिया गज़ट प्रथम भाग तारीख़ २५ मार्च पृष्ठ ३५२)

विश्व-विद्यालय के सम्बन्ध में जो क़ानून पास किया गया उसका नाम बनारस-हिन्दू यूनिवर्सिटी ऐक्ट पड़ा। लार्ड हार्डिंग महोदय ने हिन्दू-विश्व-विद्यालय की नींव ४ फरवरी सन् १६१६ को डाली। उस समय उस स्थान पर बड़े-बड़े राजा, रईस और विद्वानों का समूह एकत्रित हुआ था, जिसमें निम्न-लिखित सज्जन विशेष उल्लेखनीय हैं। महाराजा काश्मीर, जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़, अलवर, नाभा, दतिया, झालावार और बनारस। विविध प्रान्तों के गवर्नर, प्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीश-चन्द्र बसु, सर प्रफुल्लचन्द्र राय, डाक्टर हारोलडमान, सर शंकरन नायर-(शिक्षा-विभाग के सदस्य), अन्य कई राजे-महाराजे तथा प्रसिद्ध भारतीय महिलायें और सज्जन उपस्थित हुए थे।

काशी के दक्षिण जगद् जननी जाह्नवी के पश्चिम जिसे नगवा कहते हैं, विश्व-विद्यालय के लिए उपयुक्त स्थान चुना गया। यह स्थान ६ लाख रुपये में लिया गया था और नगर से बिलकुल बाहर है, जिसके कारण यहाँ की जलवायु बड़ी

ही आरोग्य-बर्धक है। प्राचीन काल में विद्यापीठ और गुरुकुल ऐसे ही स्थानों में बना करते थे। विद्याकेन्द्र का आदर्श यह ही है वह साधारण जनपद से अलग ही होता है जिससे कि वहाँ की प्रकृति विद्या की उन्नति में अधिकाधिक सहायक होती है। बड़े-बड़े इञ्जिनियरों तथा चतुर निर्माणकों की सहायता से विश्व-विद्यालय का मानचित्र बनाया गया। सन् १९१६ ईसवी के मई मास से मकानों का बनना आरंभ हो गया। अब तक जो इमारतें बन चुकी हैं उनके नाम ये हैं:—आर्ट-कालेज, रसायन-शाला, विज्ञान-शाला, विद्युत्-भवन, इञ्जिनियरिंग-कालेज तथा वर्कशाप, प्रथम छात्रावास, द्वितीय छात्रावास, चतुर्थ छात्रावास, इञ्जिनियरिंग-कालेज का छात्रावास, महारानी भिनगा का दिया हुआ क्षत्रिय-छात्रावास, कन्या-कालेज, आयुर्वेद-कालेज।

विश्व-विद्यालय के संरक्षकों के निम्नलिखित नाम हैं। इससे यह अच्छी तरह प्रमाणित हो जायगा कि हिन्दू-विश्व-विद्यालय एक अखिल भारतीय संस्था है न कि केवल प्रान्तीय।

महाराजा मैसूर, काश्मीर, उदयपुर, जोधपुर, जयपुर, ग्वालियर, किशनगढ़, अलवर, कोटा, इन्दौर, पटियाला, नाभा, बनारस, दतिया, महारावल डोंगरपुर, महाराजा राना धौलपुर, महाराजा कपूरथला, झालावार, गवर्नर साहब बम्बई, मद्रास, बंगाल, पञ्जाब, बिहार-उड़ीसा तथा और ब्रिटिश शासक। संयुक्त प्रान्त के गवर्नर साहब विज़िटर हैं। विश्वविद्यालय

को सरकार की ओर से पहले प्रति वर्ष १ लाख रुपये की सहायता मिलती थी। थोड़े दिनों के बाद यह रक़म डेढ़ लाख कर दी गई। इस वर्ष पुनः एसेम्बली के अधिवेशन में यह पास हुआ है कि भारतीय सरकार विश्व-विद्यालय को तीन लाख प्रति वर्ष सहायता देगी तथा १५ लाख रुपया तीन क़िस्त में विश्वविद्यालय को अपना पिछला हिसाब चुकाने के लिए देगी। चौबीस हज़ार प्रति वर्ष पटियाला तथा जोधपुर दरबार से, बारह हज़ार प्रति वर्ष मैसूर, काश्मीर और बीकानेर दरबार से मिलता है। इस प्रकार विश्व-विद्यालय इन सुयोग्य तथा कीर्तिमान् भारतीय नरेशों और सरकार की कृपा से चलता है। विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि इसके शिक्षा-विभाग के सदस्य, सेनेट के मेम्बर, कौंसिल के मेम्बर इत्यादि अधिकारी भारत के सब प्रान्तों के होते हैं। भारत के किसी प्रान्त का स्कूल इस विश्वविद्यालय में अपने यहाँ के विद्यार्थियों को यहाँ की एडमिशन परीक्षा देने के लिए भेज सकता है। यहाँ का सिन्डीकेट बोर्ड कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, पंजाब, नागपुर, दिल्ली, पटना, ढाका, लखनऊ, अलीगढ़, आगरा, यू० पी० तथा इन्टरमिजिएट बोर्ड की परीक्षा पास करनेवाले विद्यार्थियों को अपने कालेज में भर्ती होने की आज्ञा दे सकता है। अन्य विश्व-विद्यालयों के आइ० ए, आइ० एस० सी० पास यहाँ बी० ए० या बी० एस-सी० में ले लिये जाते हैं। यहाँ के विद्यार्थी भी अन्यत्र लिये

जाते हैं। विश्व-विद्यालय अपना चांसलर तथा प्रोचांसलर स्वयं चुनता है। इसके अलावा वाइस चांसलर और प्रोवाइस चांसलर भी चुनता है यद्यपि इन आख़ीरी दो पदों के निर्धारित करने के लिए "विज़िटर" की राय लेनी पड़ती है। विश्व-विद्यालय में बहुत सी परीक्षायें होती हैं और उत्तीर्ण विद्यार्थियों को उपाधि दी जाती है। विश्व-विद्यालय गत १३ वर्ष से विश्व-विद्यालय की ओर बी० ए०, बी० एस-सी०, एम० ए० आचार्य, इञ्जिनियरिंग, आयुर्वेदाचार्य आदि की परीक्षायें लेता है तथा उपाधि वितरण करता है। विश्व-विद्यालय की धारा नं० १६ में यह लिखा गया है कि इस विश्व-विद्यालय के उत्तीर्ण छात्रों को वही अधिकार है जो कि किसी अन्य सरकारी व अर्ध सरकारी संस्था के उत्तीर्ण विद्यार्थी को है।

हिन्दू विश्व-विद्यालय का हिसाब-किताब प्रति वर्ष योग्य तथा सरकार से नियुक्त किये गये एकाउन्टेन्टों द्वारा किया जाता है और गवर्नमेंट आफ़ इन्डिया गज़ट में प्रकाशित होता है। अब तक मालवीयजी ने विश्व-विद्यालय के लिए लगभग एक करोड़ रुपया इकट्ठा किया है और गत वर्ष 'द्वितीय करोड़' के लिए जनता से अनुरोध किया था। उपरोक्त इकट्ठा किये हुए धन में से सरकारी क़ानून के अनुसार पचास लाख रुपया सुरक्षित निधि में जमा है। समय आने पर वह काम में लाया जा सकता है। अब तक विश्व-विद्यालय को प्रति वर्ष सात लाख की आय थी; पर सरकारी सहायता बढ़ जाने से अब वह साढ़े

आठ लाख के हो गई है। लेकिन जैसी मालवीयजी की इच्छा है वैसा विश्व-विद्यालय बनाने के लिये और भी अधिक द्रव्य की आवश्यकता है। महामनाजी की यही इच्छा है कि यह विश्व-विद्यालय सचमुच विश्व की विद्याओं का आलय बन जाय। इस इच्छा की पूर्त्ति के लिए वे प्रति वर्ष कुछ नई स्कीम बनाते हैं। यदि उनसे कोई कहता है कि पण्डितजी, आप युनिवर्सिटी का विस्तार बहुत बढ़ाते जाते हैं, युनिवर्सिटी का संचालन आप के बाद कौन करेगा तो मालवीयजी उत्तर देते हैं कि चलानेवाले तो बहुत होंगे पर विस्तार करनेवाला बिरला ही होगा।

इस विश्व-विद्यालय में साहित्यिक और वैज्ञानिक शिक्षा के सिवाय गायन तथा वाद्य-कला की शिक्षा भी दी जाती है तथा फौजी शिक्षा देने के लिए भी प्रबन्ध है। उसके लिए भारत की ओर से एक अँग्रेज़ सार्जेंट रहता है। शारीरिक शिक्षा के लिए एक नया कालेज (शिवाजी कालेज आफ़ फिजिकल कलचर) खुला है।

जो कुछ ऊपर कहा जा चुका है उससे यह प्रकट हो जायगा कि यह विश्व-विद्यालय एक अखिल भारतवर्षीय संस्था है और हर जाति और सम्प्रदाय के विद्यार्थियों के लिए इसका द्वार खुला है। यह प्रबन्ध किया जा रहा है कि यह विश्व-विद्यालय राष्ट्रीय शिक्षा देने के लिए सर्वोत्तम रूप से पूर्ण संस्था बन जाय, जहाँ कि देश के नवयुवक शिक्षा प्राप्त करके

अपने देश, धर्म और जाति को रक्षा करने को तैयार रहें। ऐसा करने के लिए शिक्षा के अनेक विभाग यहाँ खोले गये हैं जहाँ कि उनको सिद्धान्तात्मक तथा क्रियात्मक दोनों प्रकार की शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि यहाँ जितने विषयों के पढ़ाने का प्रबन्ध है उतने विषय भारतवर्ष के किसी और विश्व-विद्यालय में नहीं पढ़ाये जाते। यह आशा है कि यहाँ के विद्यार्थी सदाचारी होकर निकलेंगे। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि यहाँ के प्रायः अधिकांश विद्यार्थी स्वदेश-प्रेमी तथा समाज-सुधारक निकलते हैं और अपने-अपने रहने के स्थान में जाकर सीखे हुए सिद्धान्तों का प्रचार करते हैं।

यह संस्था आज हिन्दू समाज, नहीं-नहीं, भारतीय समाज की बहुमूल्य सम्पत्ति है। भारत के कोने-कोने से छात्र-गण आ कर यहाँ विद्या-लाभ करते हैं।

मालवीयजी का हिन्दी के प्रति प्रेम

जिसको मातृभाषा, मातृ भूमि और माता से प्रेम नहीं वह मनुष्य मनुष्य नहीं। जो इन तीनों के प्रति अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता उसका जन्म संसार में व्यर्थ हुआ और वह पृथ्वी पर भार-समान है। उसकी अनुपस्थिति में ही पृथ्वी प्रसन्न होगी। मातृभूमि की सेवा के साथ-साथ मालवीयजी मातृभाषा की सेवा करना न भूले। यों तो मातृभूमि

की उन्नति में मातृभाषा की उन्नति भी सम्मिलित है, तो भी मातृभाषा हिन्दी की ओर आप की विशेष प्रवृत्ति रही है। शिक्षा-काल के आरम्भ से ही हिन्दी की आपने सेवा की है। अब भी हिन्दी-साहित्य के विकास की ओर जितना आप अग्रसर हैं उतना बहुत कम लोग हैं। आज कल देश में शिक्षा का माध्यम अँग्रेज़ी है, पर आप चाहते हैं कि जहाँ तक हो सके शिक्षा का माध्यम हिन्दी ही बने। आप विश्व-विद्यालयों की उच्च कक्षाओं का हिन्दी में शिक्षा देने का प्रयत्न कर रहे हैं। इसके लिए आपने माननीय श्री युगल-किशोर बिड़ला से पचास सहस्र रुपया प्राप्त कर एक कमेटी कायम की है, जो पाठ्य-पुस्तकों को हिन्दी में अनुवादित करने का कार्य कर रही है। आशा है कि बहुत शीघ्र विश्व-विद्यालय की उच्च कक्षाओं में हिन्दी-द्वारा शिक्षा देने का प्रबन्ध होजायगा। कलकत्ता विश्वविद्यालय के बाद हिन्दू-विश्व-विद्यालय ही भारतवर्ष की एक ऐसी संस्था है जहाँ कि देशी भाषा में शिक्षा देने के लिए ऐसा अच्छा प्रबन्ध है। यहाँ हिन्दी की ऊँची से ऊँची शिक्षा दी जाती है और योग्य से योग्य अध्यापकों को संग्रह कर रखा है। आप साहित्यिक-सेवा की ओर भी ध्यान देते हैं। यों तो आपने साहित्य की सेवा करना उस समय से आरंभ किया है जब कि आप 'हिन्दुस्तान' पत्र का सम्पादन करते थे। यद्यपि मालवीयजी ने हिन्दी भाषा में कोई बड़ी पुस्तक नहीं रची है तो भी 'हिन्दुस्तान' पत्र की

पुरानी फ़ाइलों के देखने से आप की योग्यता का पता चलता है। आप हिन्दी के अच्छे लेखक हैं। आपकी लेख-प्रणाली सरल तथा ओज-पूर्ण होती है। आपके फुटकर लेखादि बहुत अच्छे हैं। धार्मिक विषयों की एकाध पुस्तकें जो कि हिन्दी और संस्कृत दोनों में हैं आपने लिखी हैं। जैसे—सनातन-धर्म प्रदीपिका आदि। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति का आसन भी आपने दो बार सुशोभित किया है। संयुक्तप्रान्त में जिस समय सर एटनी मेकडानल छोटे लाट थे उस समय यहाँ की प्रजा ने अदालतों में नागरी लिपि-प्रचार के लिए एक प्रार्थनापत्र भेजा था और उसके लिए बड़ी कोशिश की थी। उस कार्य में भी मालवीयजी ने अपना हाथ बटाया था। अन्त में आप के ही प्रयत्न से सफलता प्राप्त हुई। लाट साहब की सेवा में नागरी-मेमोरियल का भेजना, नागरी के सच्चे गुणों के कीर्तन में पुस्तकें लिखना और स्वार्थशून्य हो, अपने काम को छोड़ और हज़ारों रुपये ख़र्च कर इस कार्य में लग जाना इस बात को सूचित करता है कि मालवीयजी मातृ-भाषा के कितने शुभचिंतक हैं।*

हिन्दू विश्व-विद्यालय में समावर्तन-संस्कार का भाषण देते हुए आप कहते हैं अँग्रेज़ी कभी भारतवर्ष की भाषा नहीं हो सकती। लगभग पचहत्तर वर्ष की शिक्षा-काल के बाद आज भी अँग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों की संख्या १०० पीछे ८·६ ही है,

*बाबू श्याम सुन्दरदासजी लिखित एक पुस्तक से

इसलिए इस पद की अधिकारिणी भारतवर्ष की भाषाओं में सबसे प्रधान जो भाषा है हिन्दी—हिन्दुस्तानी और जो कि भारतवर्ष की बोल-चाल की भाषा है वही हो सकती है ।

पाठक समझ सकते हैं कि मालवीयजी के हृदय में मातृ भाषा के प्रति कितना प्रेम और श्रद्धा-भाव है ।

मालवीयजी और स्काउटिंग

भारतवर्ष क्या संसार में ऐसे मनुष्यों की संख्या बहुत कम है जो कि हर एक प्रकार के आन्दोलन में भाग लेते हों। कुछ लोगों का तो यह विचार है कि 'एक हाथ दो तरबूज़ नहीं उठते' पर मालवीयजी के जीवन ने इस बात को ग़लत सिद्ध कर दिया है। मालवीयजी ने समयानुकूल सब देश-हित के कार्यों में हाथ बटाया है। पाठकों ने 'लार्ड रावर्ट बेडन पावल' का नाम अवश्य सुना होगा। आपने इतनी प्रसिद्धि जो पाई है, वह 'स्काउटिंग' की वजह से है। आपने ही स्काउटिंग का श्रीगणेश किया है। स्काउटिंग भारतवर्ष में लड़कों का एक प्रकार का खेल समझा जाता है—इसमें विशेषतया बालक लोग ही प्रविष्ट होते हैं। मालवीयजी का इस जीवन में प्रवेश करना दो बातें प्रकट करता है। एक तो यह कि वे किसी भी समाज में सम्मिलित होने में संकोच नहीं करते। वृद्ध-समाज में वे वृद्ध हैं; पर नवयुवक-समाज में एक बालचर की हैसियत से वे एक नवयुवक हैं। वे हमारे चीफ़ स्काउट हैं। इतने बड़े महापुरुष होकर भी 'बालकों के खेल' में सम्मिलित होते देख कौन नहीं कह उठेगा कि मालवीयजी धन्य हैं। दूसरी बात यह प्रकट होती है मालवीयजी भारत के नवयुवक समाज की विशेष उन्नति चाहते हैं। उन्हें उत्साहित करने के

लिए ही उनके बीच आप लड़के बन कर कूद पड़े हैं। आप की यह धारणा है कि भारत के नवयुवकों को जबतक शारीरिक शिक्षा काफ़ी नहीं दी जायगी तबतक देश की उन्नति नहीं हो सकती। हिन्दू विश्व-विद्यालय में शिवाजी-कालेज (व्यायाम-शाला) खोलने की आवश्यकता दिखाते हुए आपने लिखा है कि—"देश की अतुल सम्पत्ति देश के हृष्ट-पुष्ट मनुष्य हैं, उन्हीं के ऊपर देश की उन्नति निर्भर है। शारीरिक व्यायाम की कमी ने हमारे देश के नवयुवकों की सार्वअंगिक उन्नति में बड़ा भारी घाटा पहुँचाया है"। इसी घाटे को पूरा करने के लिए विश्व-विद्यालय में (Shivaji College of Physical Culture) स्थापित कराया है तथा विश्व-विद्यालय में सैनिक शिक्षा देने के लिये एक 'सैनिक-विभाग' खुलवाया है। उसमें शिक्षा देने के लिये भारत-सरकार की ओर से एक अँग्रेज़ नियुक्त है। मालवीयजी ने सार्व-देशिक नवयुवक समाज की उन्नति की अभिलाषा से ही बालचर-संस्था में प्रवेश किया है, इससे उनके जीवन की सर्वांगीणता झलकती है।

यह देख कर आश्चर्य होता है कि वह मनुष्य जो कि एक बड़े भारी विश्व-विद्यालय का संचालक, सनातन-धर्म महासभा का प्राण, हिन्दू महा-सभा का संचालक, भारतीय परिषद् तथा वर्तमान राष्ट्रीय आन्दोलन आदि इतने कार्यों में भाग लेता है वह कहाँ से इतना समय पाता होगा। इसका उत्तर

यही है कि जिसने संसार की भलाई करना ही अपने जीवन का ध्येय बना लिया हो उसके लिये सब कुछ साध्य है। मालवीयजी का बालचर-संस्था में प्रवेश करना यह बताता है कि निखिल भारत के बालकों के मानसिक, नैतिक और शारीरिक विकाश के लिए ही आपने "भारतीय सेवा-समिति बालचर मंडल (स्काउट-एसोसिएशन)" खोला। आपकी स्थापित की हुई प्रयाग-सेवा-समिति की समाज-सेवा को कौन नहीं जानता। १९३० के कुम्भ में समिति ने यात्रियों के आराम के लिए जो प्रवन्ध किया उसे देख कर लोग चकित हो जाते थे। उसी सेवा-समिति के अन्तर्गत यह स्काउट-एसोसिएशन खोला गया और आप स्वयं उसके प्रधान नायक अथवा 'चीफ़-स्काउट' हुए। आप कैसे "चीफ़ स्काउट" हैं, यह नीचे लिखी एक घटना से मालूम हो जायगा।

एक बार सन् १९२६ ईसवी में मालवीयजी मेरठ जा पहुँचे। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि प्रयाग और काशी को छोड़ कर अन्य स्थानों के लोग मालवीयजी के दर्शन करने को बहुत लालायित रहते हैं। जब लोगों ने मेरठ में उनके आगमन की बात सुनी, तब वे फूले न समाते थे। सब के हृदय में उनके दर्शन की उत्कण्ठा हो रही थी। आपने वहाँ जाकर भिन्न-भिन्न संस्थाओं का निरीक्षण किया। भला मेरठ का स्काउट-आश्रम क्यों न इस सुवर्ण संयोग से लाभ उठाता? उसने भी अपने चीफ़-

स्काउट के स्वागत की तैयारी की। शेर बच्चे, बालवीर आदि सभी तैयार होकर दर्शनार्थ आश्रम में पहुँच गये। उस दिन २२ सितम्बर था। सायंकाल के चार बजे थे। मालवीयजी की मोटर आने ही वाली थी। स्काउट उधर की ओर एकटक लगाए देख रहे थे। कोई कहता था यह आये, कोई कहता था वह आये—इतने ही में मोटर की 'पों-पों' सुनाई पड़ी। बालचर उछल पड़े, शेर बच्चे कूदने लगे, रोवर प्रफुल्लित होने लगे। सब मिल कर "एम, ए, एल, ए, वी, आई, ए; चीफ़ स्काउट, चीफ़ स्काउट, एम, ए, एस, एस्, ए;" की ध्वनि करने लगे। उनकी इस हर्ष-ध्वनि ने तथा पूज्य मालवीयजी की जै-ध्वनि ने साथ मिलकर अपने मनोनीत अतिथि चीफ़ स्काउट का स्वागत किया। स्वागत होने के बाद आपने स्काउट-आश्रम का निरीक्षण किया। तत्पश्चात् आप स्काउटों-द्वारा बनाये गये पंडाल में पधारे। वहाँ स्काउटों ने एक स्वागत-पत्र पढ़ा। मैं उसे यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ। स्वागत-पत्र का प्रत्येक अक्षर, प्रत्येक शब्द और प्रत्येक पंक्ति प्रेम-रस में डुबो-कर कही गई है। उसे एक बार पढ़ने से मालवीयजी के प्रति स्काउटों का प्रेम और उनकी श्रद्धा का क़ाफी सबूत मिलता है।

स्वागत-पत्र

पूज्य-पाद, भारत-भूषण, त्यागमूर्ति पण्डित मदनमोहनजी मालवीय, चीफ़ स्काउट, भारतीय सेवासमिति-बालचर-मण्डल की परम-पुनीत सेवा में सादर, सभक्ति समर्पण।

श्रद्धास्पद भ्राता जी!

हम सेवासमिति बालचर-मण्डल मेरठ के सदस्य तथा बालचर, आज फूले नहीं समाते; कारण आज हमें पहलेपहल अपने पथ-प्रदर्शक उन महानुभाव के चरण कमलों में अपनी श्रद्धाञ्जलि भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिनके जीवन को अपने सम्मुख रख कर यह आदर्श संस्था गत ६ वर्षों से मेरठ के बालकों में शिक्षा-कार्य कर रही है।

महामान्यवर! आप के गुणग्राम का वर्णन करना छोटे मुँह बड़ी बात होगी। केवल इतना ही कह देना पर्याप्त है कि महाभारत के सारपूर्ण वाक्य—

नत्वहं कामयेद् राज्यं, न स्वर्गं न पुनर्भवम्।

कामये दुःख तप्तानां प्राणीनामार्तिनाशनम्॥

को आपने अपने जीवन में अक्षरशः चरितार्थ करके दिखलाया है।

तपस्विन् ! देश के अग्रगण्य राजनैतिक नेता होते हुए भी आप जाति के मूल-धन बालकों को नहीं भूले और अपना अधिकांश समय उन्हीं के सुधार में लगाते हैं । काशी-विश्व-विद्यालय, भारतीय सेवासमिति बालचर-मण्डल तथा अन्य अनेकानेक संस्थाएँ आप के बाल शिक्षा-सम्बन्धी कार्य अवि-श्रान्त परिश्रम के उज्ज्वल उदाहरण हैं ।

श्रीमान् ! आपके पद-चिन्हों का अनुसरण करते हुए, यहाँ भी स्काउट-पद्धति पर और कामों के साथ-साथ एक छोटा सा स्काउट-आश्रम स्थापित किया गया है, परन्तु अपना निज का कोई स्थान न होने से, आर्थिक कठिनाइयों से, बालकों के संरक्षकों की उदासीनता के कारण और इन सब के अतिरिक्त स्वयं अपनी त्रुटियों के कारण हम अपने लक्ष्य में तबतक पूर्ण-तया सफल नहीं हो सकते, जबतक आप जैसे अनुभवी, वयो-वृद्ध नेता समय-समय पर हमारे बीच पधार कर अपने महत्त्व-पूर्ण उपदेश से हमारे कार्य-संचालन में सहायता करके हमारा उत्साह न बढ़ावें ।

पूज्यवर ! कौन नहीं जानता कि आपके समय का एक-एक क्षण अनमोल है; परन्तु देश की आशा-लता बालकों के जीवन-सुधार से आपको विशेष सहानुभूति है । इसके अतिरिक्त आप हमारे चीफ़ स्काउट हैं, इसी नाते से हमने आप के बहुमूल्य

समय पर हस्तक्षेप करने की धृष्टता की है। इसके लिए हम सविनय क्षमा-प्रार्थी हैं।

अन्त में परम पिता परमात्मा से हमारी यह प्रार्थना है कि वह आपको दीर्घजीवी करे और आपसे यह याचना है कि आप हमें ऐसा शुभाशीर्वाद दें कि जिससे हम लोग और ये नन्हे बालक आपके बताये हुए मार्ग पर चलने और अपना कर्तव्य-पालन करने में अग्रसर हों।

हम हैं आप के स्नेहपात्र अनुज—

सेवासमिति-बालचर-मण्डल मेरठ के सदस्य तथा बालचर।

स्काउट-आश्रम-मेरठ, २१ सितम्बर सन् १९२६ ई०

स्वागत-पत्र के समाप्त होने पर मालवीयजी ने अपनी सुधा-सम वाणी से अमृत-वर्षा करनी प्रारंभ की। आपने अपने उपदेश में बालकों के संरक्षकों को यह परामर्श दिया कि—"यदि आप अपने बालकों को सचमुच अच्छा बालक बनाना चाहते हैं, तो उन्हें शीघ्र ही शेर बच्चा या स्काउट बना दो। फिर देखो, वे कैसे धीर, वीर, चुस्त और दूसरों की सेवा करनेवाले बनते हैं।" बालकों को आपने उपदेश दिया–"मेरे नन्हे-नन्हे प्यारे बालको! तुम देश की आशालता हो। तुम विश्वासी, मज़बूत, पढ़ने में होशियार और देश-सेवक बनो। तुम्हीं में से ध्रुव, प्रहलाद और अभिमन्यु निकलेंगे। तुम्हें प्रसन्न वदन देख कर ख़ुशी के मारे मेरा शरीर गद्गद हो जाता है। तुम्हारा गाना मुझे

बहुत ही पसन्द आया। मुझे अफ़सोस है कि मुझे अधिक समय नहीं, नहीं तो मेरी इच्छा तुम्हारे बीच बहुत देर तक ठहरने की थी। मुझे तो तभी सन्तोष होगा, जब बच्चे-बच्चे को स्काउट पाऊँगा।

मालवीयजी के प्रत्येक वाक्य से यह ध्वनि निकलती है कि वे अपने हृदय से भारत के भावी नागरिकों को शुद्ध, सदाचारी तथा वीर व्रतधारी देखना चाहते हैं। उनकी यह अभिलाषा है कि भारत का बच्चा-बच्चा माता की रक्षा करने के लिए स्वार्थ-त्यागी और वीरवेश-भूषित हो। भगवन्! दया निधान! तुम वह दिन शीघ्र दिखाओ जब कि मालवीयजी की अभिलाष पुष्पित तथा फलित हो और मालवीयजी उस फल के रस का रसास्वादन कर सकें।

मालवीयजी के राजनैतिक विचार

महामना मालवीयजी राजनैतिक बातों के एक बड़े भारी परिडत माने जाते हैं। आप का राजनैतिक ज्ञान बहुत ही बढ़ा-चढ़ा है। मुझमें इतनी योग्यता नहीं कि उस पर किसी तरह की आलोचना कर सकूँ। पर लोगों को आपके विषय में जो कुछ कहते सुना है वही मुझे थोड़ा-बहुत स्मरण है। अतः मुझे इस बात का भय है कि कहीं कोई ऐसी बात न लिख बैठूं जो कि आप के विचारों के विरुद्ध हो। आशा है कि इस विषय में पाठकवृन्द मेरी अनभिज्ञता समझ कर मुझे क्षमा करेंगे।

राजनैतिक मंडल में सब से प्रसिद्ध बात आपके विषय में जो कही जाती है वह है आप की 'नीति'। आप अपनी बातों को जिस ढंग से व्यक्त करते हैं उसे सुन कर बड़े-बड़े क़ानून-दाँ दंग रह जाते हैं। जिस समय आप लेजिसलेटिव असेम्बली में 'जलियाँवाला' बाग़ के विषय पर अपना महत्त्वपूर्ण भाषण देने लगे, उस समय तमाम सरकारी सदस्यों के दाँत खट्टे हो गये और किसी को इतनी हिम्मत न हुई कि आपके प्रश्नों का उत्तर देता।। भारतवर्ष एक पराधीन देश है। यहाँ इतनी पराधीनता है कि हम जो चाहें कह भी नहीं सकते। हमारे भाषणों के ऊपर अनेक प्रकार की रुकावटें डाली गई

हैं। १४४, १२४ तथा १५३ ए०, नाम की धारायें हमारे भाषणों के ऊपर सर्वदा संगीन ले कर तैनात रहती हैं। जहाँ कहीं क़ानूनी दायरे की परिमित सीमा को लाँघने का प्रयत्न किया वहीं हम गिरफ़्तार होकर कारागार में भेज दिये जाते हैं। हमारे भाषणों को 'ख़तरनाक' बता कर हमारे ऊपर मुक़द्मा चलाया जाता है और हमें जेल की हवा खानी पड़ती है या .जुर्माना देना पड़ता है। देश का ऐसा कोई बिरला ही सार्वजनिक नेता होगा जो इस तरह दो-एक बार जेल का मेहमान या दंड-भागी न बना हो। पर पण्डित मदनमोहन माल-वीय के भाषणों के ख़तरनाक होते हुए भी सरकार अभी तक उन्हें ख़तरनाक नहीं बता सकी है और न कभी कोई इस तरह का अभियोग ही उनके ऊपर चला है। आपके वाक्य ऐसे नीतिमय होते हैं कि पक्षवाले या विपक्षवाले कोई भी उन्हें अपने विरुद्ध नहीं समझ सकते। पक्षवालों को उसमें अपना मतलब देख पड़ता है और विपक्षी को उसमें एक भी वाक्य अपने विरुद्ध नहीं मिलता।

देश में दासत्व का प्रबल प्रताप होते हुए भी यहाँ कई एक राजनैतिक दल हैं। दासत्व का उल्लेख करने से हमारा अभिप्राय यह है कि जो देश स्वतन्त्र हैं, वहाँ जितने राजनैतिक दल होते हैं वे सब कुछ न कुछ अपना अस्तित्व रखते हैं; पर यहाँ तो सब से बड़ा राजनैतिक दल 'कांग्रेस-मंडल' भी उन थोड़े से पढ़े-लिखे लोगों का एक छोटा सा गुट माना जाता

है और उसके बारे में यह कहा जाता है कि इसका प्रभाव कुछ थोड़े-बहुत पढ़े-लिखे लोगों में ही परिवेष्ठित है तब भला और राजनैतिक दलों की बात कौन चलावे। तब भी यहाँ के राजनैतिक पुरुषों ने कई दल बना रखे हैं। वास्तव में इन दलों का कुछ मूल्य नहीं है और ये नाटक-मंच के दृश्य की ही भाँति हैं। खैर—मालवीयजी राष्ट्रीय दल के नेता माने जाते हैं। एसेम्बली के जीवन-काल में ये राष्ट्रीय दल के नेता थे। आप कट्टर तो नहीं, पर कांग्रेसवादी हैं। आपको यदि हम कट्टर कांग्रेसवादियों की श्रेणी में रखें तो यह कहना होगा कि आप कट्टर कांग्रेसवादियों में सब से 'नरम' नेता हैं और यदि उदारदल के राजनैतिकों की श्रेणी में आपकी गणना की जाय तो आपको उदार दल में सबसे गरम नेता कहना होगा। जिस समय से अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस-कमेटी ग़ैर क़ानूनी संस्था करार दी गई उसी समय से कुछ अंशों में आप सविनय अवज्ञा-आन्दोलन का समर्थन करने लगे हैं। यही नहीं, बल्कि गोरखपुर की एक मीटिंग में भाषण करते हुए आपने कहा कि 'सत्याग्रह करना' सब का अधिकार है। पण्डित मोतीलाल नेहरू के पकड़े जाने के बाद तारीख़ ५ जुलाई १९३० को प्रयाग में आपने जो भाषण दिया है उससे भी आपके विचारों के बदलने की गन्ध आती है; पर तब भी यह कहना ही होगा कि आप सहयोग में काफ़ी विश्वास करते हैं। यों तो समय आने पर सभी की नीति बदल

जाती है उसी तरह आप भी कुछ कड़े हो गये हैं; पर साधारण-तया आप असहयोग के विषय में अति नहीं पसन्द करते। आपका विचार है कि धैर्य, आशा तथा सहयोग से जो मिले उसे ले लो और बाक़ी के लिए लड़ते रहो। सन् १९२८ ईसवी की कलकत्ता-कांग्रेस ने जब पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव रखा तब आपने उसका पूर्ण विरोध किया; पर लाहोर-कांग्रेस ने आज़ादी का डंका बजा ही दिया। इसके थोड़े ही दिनों के बाद महात्मा गांधी ने क़ानून-भंग करना शुरू कर दिया। सारे देश में बेतरह धूम मच गई। वाइसराय और महात्मा गांधी दोनों की नीति पर टीका करते हुए मालवीयजी ने काशी में १४ जुलाई सन् १९३० ई० को कहा कि वायसराय ने सर्वदल सम्मेलन की माँग पर विचार न कर भूल की और साथ ही साथ यह भी कि महात्मा गांधी ने भी आन्दोलन खड़ा कर अच्छा नहीं किया। परन्तु एक बात यहाँ भूलना न होगा कि मालवीयजी भी देश-भक्त हैं और सरकार की चाल को समझते हैं। उसी भाषण में आगे चल कर आपने यह भी कहा कि बाद की घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि महात्मा गांधी ने जो कुछ किया और जिस अखंड शक्ति (भगवान्) ने इस आन्दोलन में उनको सहायता दी वह बहुत ही ठीक है। क्योंकि उनका आन्दोलन शांतिमय है और ऐसा आन्दोलन करना उस जनता का हक़ है जिस पर कि बिना उसकी राय के शासन किया जाता है तथा जिसको राजनैनिक जाल में फँसाया जाता है।

........................जबतक सरकार हमारे ऊपर अत्याचार करती रहेगी, राजनैतिक क़ैदियों को न छोड़ेगी तबतक हम लोगों का यही कर्तव्य होगा कि इस लड़ाई को अत्याचार और अन्याय सहते हुए भी जारी रखें।

हमें इस झगड़े को आत्मसमर्पण और पूर्ण त्याग करते हुए उस समय तक ज़ोरों के साथ बढ़ाना होगा जबतक कि वायसराय स्वयं महात्माजी के समक्ष सुलह का पैग़ाम लेकर उपस्थित न हों। "गोल मेज़-सभा में सम्मिलित होने के विषय में आप कहते हैं कि जबतक सरकार महात्मा-गांधी और कांग्रेस के साथ समझौता नहीं कर लेते तबतक कोई आत्म-सम्मानी व्यक्ति कान्फरेन्स में जाने का विचार तक नहीं कर सकता। यदि कोई ऐसा व्यक्ति है जो कि गोल मेज़-सभा में जाना चाहता है तो वह समझ ले कि वहाँ उसे लोकमत को नहीं, बल्कि अपने निज के मत को उपस्थित करने का अधिकार है। सुलह का रास्ता साफ़ है। जो अत्याचार जनता के ऊपर हो रहा है वह रोक लिया जाय, वायसराय महात्माजी को आशा दिलावें, तमाम राजनैतिक क़ैदी छोड़ दिये जाँय तब हम लोग गोल मेज़-सभा में जाने का विचार करेंगे तथा वहाँ जाकर स्वतन्त्र-भारत के विधानों के बनाने में सरकार का साथ देंगे।"

मालवीयजी की देश-सेवा

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, मालवीयजी अपने विद्यार्थी-जीवन से ही देशहित और समाजहित के कार्यों में लगे रहते थे। उसी समय से उनकी देश-भक्ति आरंभ होती है। आप देश-सेवा-व्रत के सच्चे उपासक हैं। आपने पहले-पहल सन् १८८६ ईसवी में कांग्रेस से सम्बन्ध जोड़ा। यह कांग्रेस की आयु का दूसरा वर्ष था। इस वर्ष का अधिवेशन कलकत्ते में स्वर्गीय दादा भाई नौरोज के सभापतित्व में हुआ था। आप प्रायः प्रतिवर्ष कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन पर, अपने सौ काम छोड़ कर जाते हैं। उस वर्ष (१८८६ ई०) आप कलकत्तावाली कांग्रेस में पण्डित आदित्यरामजी के साथ गये थे। कांग्रेस-पंडाल में बैठे हुए लोगों का भाषण सुनकर आपकी इच्छा हुई कि मैं भी भाषण दूँ। पण्डित आदित्यरामजी द्वारा-उत्साहित किये जाने पर आपने उठकर भाषण देना आरंभ किया। उस समय सभा-भवन में आपके व्यक्तित्व और भाषण-प्रतिभा ने उपस्थित जनता पर अपना बड़ा प्रभाव डाला। उस वर्ष की कांग्रेस-रिपोर्ट में जेनरल सेक्रेटरी श्रीह्यूम महोदय लिखते हैं कि "इस वर्ष सब से प्रभावशाली भाषण पण्डित मदनमोहन मालवीय का हुआ। उनके भाषण में एक विशेष प्रकार की शक्ति थी, एक प्रकार का नया जीवन था। भाषण व्यवस्थापिका सभा के सुधार

पर था। यों तो भाषण का प्रत्येक वाक्य ही जीवनमय था, पर इस वाक्य "No taxation without rehresentation" ने सभा में हलचल मचा दी।

यह वही ऐतिहासिक वाक्य है, जिससे कि अमेरिकनों ने सन् १८७८ के पहले अपनी स्वतंत्रता के युद्ध का श्रीगणेश किया था। अगले वर्ष जब मद्रास में कांग्रेस हुई तो उस समय भी आपने इस विषय पर एक सार-गर्भित भाषण दिया। राजा सर टी० माधवराव, दीवान बहादुर आर० रघुनाथ-राव और कई प्रतिष्ठित अँग्रेज़ों ने आपकी बड़ी तारीफ़ की थी। उक्त वर्ष की रिपोर्ट में भी ह्यूम महोदय ने आपकी बड़ी प्रशंसा की है। धीरे-धीरे आप राष्ट्रीय महासभा-मंच के एक प्रतिष्ठित सदस्य बन गये तथा सर फ़ीरोजशाह मेहता आदि ने भी आपको अच्छी तरह जान लिया।

जिस समय सन् १८८७ में मद्रास में राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन होनेवाला था, उस समय ह्यूम महोदय सेक्रेटरी थे। उनके हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि इस वर्ष मद्रास में अधिवेशन होने के कारण सुदूर पश्चिमोत्तर प्रदेश से (वर्तमान संयुक्त प्रदेश) से बहुत कम प्रतिनिधि यहाँ आ सकेंगे। उसी विचार में उन्होंने एक पत्र मालवीयजी के पास लिखा, वह इस आशय का था—"मैं आशा करता हूँ कि इस वर्ष कांग्रेस-अधिवेशन में बहुत से प्रतिनिधि आवेंगे, पर मुझे संशय है कि पश्चिमोत्तर प्रदेश कदाचित् ही अपनी निर्धा-

रित संख्या पूरी कर सके। मेरी यह इच्छा है कि उन्हें कोई उत्साहित करता तो अच्छा होता।" पत्र को पाते ही मालवीयजी ह्यूम साहब की अभिलाषा पूर्ण करने का प्रयत्न करने लगे। संयुक्त प्रान्त के नगर-नगर में आपने दौरा किया। आपके असीम उत्साह का फल यह हुआ कि उस वर्ष के अधिवेशन में इस प्रान्त से पैंतालिस-सदस्य सभा में उपस्थित हुए। मद्रास में अधिवेशन समाप्त होने पर आप ही के उत्साह के कारण, महासभा के अग्रिम अधिवेशन के लिए प्रयाग-स्थान निश्चित हुआ। स्वागत समिति के सेक्रेटरी श्रीमान् मालवीयजी बनाये गये। सन् १८६२ में प्रयाग में महासभा का अधिवेशन होने वाला था। उस समय प्रयाग के बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति, कांग्रेस के सच्चे सेवक पण्डित अयोध्यानाथ की अचानक मृत्यु होगई। उनकी मृत्यु से प्रयाग में शोक छागया। इससे कांग्रेस की कार्य-वाही में बड़ा भारी धक्का पहुँचा। कतिपय महोदयों ने सलाह दी कि महासभा के सैक्रेटरी उमेशचन्द्र बनर्जी को तार दे दिया जाय कि इस वर्ष प्रयाग में अधिवेशन न हो सकेगा। क्यों कि पं० अयोध्यानाथ की मृत्यु से सबका उत्साह भंग होगया है। पर कुछ लोग ऐसे भी थे, जो इस प्रस्ताव के विरोधी थे और उनके अगुआ हमारे चरितनायक पण्डित मदन-मोहन मालवीय ही थे। आप निराशायुक्त बातें सुनना नहीं चाहते थे। उस वर्ष की महासभा को सफल बनाने के लिए आप और पण्डित विश्वम्भरनाथजी ने बड़ा परिश्रम किया,

कर काम करने के लिए हिन्दुओं को उपदेश देते रहे हैं। सन् १९२७ वाली महासभा का अधिवेशन मद्रास में हुआ था। उस वर्ष वहाँ श्रीनिवास आयंगर—सभापति महोदय की कृपा से एकता-सम्मेलन भी हुआ। उस एकता-सम्मेलन में प्रत्येक जाति के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। उसमें महामना मालवीयजीने एक प्रभावशाली तथा सारगर्भित भाषण दिया था। आपका भाषण आदि से अन्त तक प्रभावशाली होते हुए भी पक्षपात रहित था। भाषण देते समय आपको पसीना आने लगा। उस समय मुसलमानों के कट्टर नेता मौलाना शौकतअली और मुहम्मदअली ने आपको पंखा झला था।

भारतवर्ष के लिए आपके हृदय में बड़ी श्रद्धा और भक्ति है। आप अपने एक लेख में लिखते हैं—

"भारतवर्ष बड़ा पवित्र देश है। धन, धर्म और सुख का देनेवाला यह देश सब देशों से उत्तम है। देवता भी यह गीत गाते हैं कि वे लोग धन्य हैं जिनका जन्म इस भारत भूमि में होता है, जिसमें जन्म लेकर मनुष्य स्वर्ग का सुख और मोक्ष दोनों पा सकता है।"

उपरोक्त कथन का एक-एक अक्षर सत्य है। वास्तव में यह हमारा प्यारा भारतवर्ष बड़ा ही पवित्र देश है। पुण्य सलिला भागीरथी अपनी अमृतमय धारा से इस देश की पवित्रता को नित्य नया किया करती है। वेदों के उच्चारण से, हवन के धुँए से यहाँ का वायु-मंडल सर्वदा पवित्र रहता है। आज गिरी

दशा में भी यह भारतवर्ष धन के लिए संसार में प्रसिद्ध है। केवल इतना ही नहीं, वरन् वैज्ञानिक-जगत् में उथल-पुथल मचानेवाले, संसार के प्रत्येक देशों-पर आधिपत्य जमानेवाले तथा वर्तमान विचार से उन्नति-शिखर पर आरूढ़ होनेवाले 'पाश्चात्य' का यह '.गुलाम देश हिन्द' रोटी का ठिकाना है।

यहाँ के धर्म के विषय में क्या कहना है? वेद-विद्या-विशारद मोक्षमूलर महोदय लिखते हैं कि "भारतवर्ष में चारों ओर धर्म की ही चर्चा है। प्रत्येक भारतवासी का दैनिक जीवन भी धर्म पर ही स्थित है। वे धर्म ही खाते हैं, धर्म ही पीते हैं और धर्म पर ही उनका सब कारोबार चलता है।"

मातृ-भूमि के दुःख दूर करने में मालवीयजी सदा तत्पर रहते हैं। आप मातृ-भूमि के सच्चे प्रेमी हैं। कुछ लोगों का विचार है कि धर्म और राजनीति को एक साथ नहीं मिलाना चाहिए, धार्मिक सुधारकों को राजनीति के झंझटों में नहीं फँसना चाहिए; परन्तु महामना मालवीयजी धार्मिक उपदेशों के द्वारा भी देशभक्ति का प्रचार करते हैं। जहाँ कहीं धर्म के विषय पर आप भाषण करते हैं वहाँ देशभक्ति को पीछे नहीं छोड़ते। आप का एक ऐसा ही भाषण दशाश्वमेध घाट काशी में हुआ था।

आप हाल तक बड़ी व्यवस्थापिका सभा के सदस्य रहे हैं। जब इन्होंने यह देखा कि इस सभा का सदस्य रहने से देश को कोई लाभ नहीं पहुँचा सकते, क्योंकि सरकार अपना

मनमाना ही करती है, तो उन्होंने जान-बूझ कर अपने पद का परित्याग कर दिया।

आप जहाँ रहते हैं वहीं देश के लिए कुछ न कुछ करते हैं। आपका कौंसिल-जीवन सन् १६०२ ईसवी से आरम्भ होता है। पंडित विश्वम्भरनाथजी की मृत्यु के बाद आप प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्य बनाये गये। इसके बहुत पहले आप प्रयाग-म्युनिसपलबोर्ड के सदस्य और वाइस चेयरमैन के पद पर रह चुके थे। प्रान्तीय-व्यवस्थापिका सभा में भी आप विशेष रूप से देश-हितकारी प्रश्नों पर लड़ते थे। बड़ी व्यवस्थापिका सभा के मंच पर भी आप स्वदेश-प्रेम के राग गाते रहे हैं। जब कभी मालवीयजी ने सरकार-द्वारा कोई ऐसा विधान बनते देखा जिससे देश के स्वत्व पर धक्का पहुँचता हो तभी उन्होंने उसका पूर्ण विरोध किया है।

देशभक्त यतीन्द्रदास ने लाहोर-जेल में सरकार का विरोध करने के लिए भोजन करना छोड़ दिया था, उसीसे उनकी मृत्यु हुई। इस पर व्यवस्थापिका सभा में बहुत हलचल मची। सदस्यों ने सरकार की कड़ी आलोचना की। इन सदस्यों में मालवीयजी भी थे। बाल-विवाह को रोकने के लिए जब बड़ी व्यवस्थापिका सभा में बिल पेश हुआ तब मालवीयजी ने उस का विरोध किया। इस कारण कुछ लोग उनकी निन्दा करने लगे और कहने लगे कि मालवीयजी सामाजिक दोषों को दूर कर देश का कल्याण करना नहीं चाहते। लेकिन, मालवीयजी

का कहना है कि मैं तो व्यवस्थापिका सभा में औरों का प्रतिनिधि होकर गया था। उन्हीं का विचार सभा के सामने रखना मेरा कर्तव्य था। मैं लोकमत की अवहेलना नहीं कर सकता।

जलियाँवाला बाग़ का हत्याकाँड ही वर्तमान असहयोग आन्दोलन का जन्मदाता है। इसी ने कितने ही भारतवासियों को अकर्मण्यता की निद्रा से उठा कर स्वदेशभक्त बनाया है। उन्हीं दिनों जगद्विख्यात महात्मा गांधी ने भारतवर्ष में असहयोग-आन्दोलन का बीज बोया।

पंजाब देश में सरकार की इस निरंकुशता ने सारे भारत वर्ष में काफ़ी तहलका मचाया। इससे बड़े से बड़े लिबरल नेता भी सरकार से बहुत चिढ़ गए। मालवीयजी उस समय इम्पीरियल लेजिसलेटिव कौंसिल (जो पीछे बड़ी व्यवस्थापिका सभा हो गई) के सदस्य थे। कौंसिल में आपने इस निरंकुशता का घोर विरोध किया। आपने हत्याकांड-सम्बन्धी अनेक सवालात सरकार से पूछे। आपके सवालात इतने विकट थे कि सरकारी पक्ष के सदस्य-मंडल में से कोई भी उन का उत्तर न दे सका। आपके इस निर्भीक विरोध को देख कर हत्याकाँड के जनक ओडायर भी घबरा उठे और जब मालवीयजी के किसी प्रश्न का उत्तर उनसे देते न बना तो मालवीयजी पर ओडायर ने निजी-शत्रुता का दोष लगाया। कांग्रेस कमेटी ने एक 'जाँच-कमेटी' पंजाब-हत्याकाँड की जाँच

के लिए बनाई थी। मालवीयजी भी उसके सदस्य थे। उसकी सदस्यता के रूप में आपने घोर परिश्रम किया। आपने पंजाब-निवासियों के दुःख का पूरा-पूरा विवरण प्रकाशित करने में जितना परिश्रम किया उतना कम लोगों ने किया। आपने सच्ची बात को ढूँढ़ा और इस बात के लिये प्रयत्न किया कि सच्चा न्याय हो।

आप इम्पीरियल लेजिसलेटिव कौंसिल के उन उन्नीस सदस्यों में थे। जिन्होंने अपने हस्ताक्षर से सुधार-सम्बन्धी (Reform) एक वक्तव्य प्रकाशित कराया था। वह वक्तव्य 'मेमोरन्डम आफ़ दी नाइनटीन' (उन्नीस की रिपोर्ट) के नाम से प्रसिद्ध है।

सन् १६२१ में दुर्भाग्यवश जनता की अशिक्षा के कारण गोरखपुर के चौरीचौरा स्थान पर पुलीस और जनता में मुठभेड़ हो गई। जनता ने वहाँ की पुलीस की चौकी को फूँक दिया। चौकी के अन्दर जो पुलीस के तेईस आदमी थे वे भी जल मरे। इस घटना से सरकार बहुत अप्रसन्न हुई और उसने काँग्रेस को दोषी ठहराया। आन्दोलन के प्रवर्त्तक महात्माजी को छः वर्ष के लिए कारावास दिया गया। इसके बाद सरकार ने अपनी दृष्टि उन लोगों पर फेरी जिन्होंने सच या झूठ हत्या-कांड में भाग लिया था। बहुत से लोग पकड़े गये। बाद को कुछ लोग छोड़ दिये गये। जो लोग अपराधी पाये गये उनकी संख्या १३८ थी। उन ग़रीबों के मामले की पैरवी

कौन करता। दयालु मालवीयजी ने उनके मुक़द्दमे में काफ़ी कोशिश की, जिससे छूटते-छूटते सिर्फ़ चार को फाँसी हुई।

भारतवर्ष के राजनैतिक क्षेत्र में असहयोग के पश्चात् बहुत सी घटनायें घटीं। पर बड़ी घटना सायमन कमीशन ही है। इस सायमन कमीशन का आज उतना महत्त्व न होता, जितना कि इसके आगे-पीछे की दो घटनाओं के कारण हुआ है। आगे की घटना मिस मेयो की पुस्तक मदर इन्डिया का प्रकाशन है तथा पीछे की घटना स्वर्गीय लाला लाजपतरायजी की मृत्यु है। पहले वाली घटना तो रही-सही थी, पर पीछे वाली घटना एक अघटित घटना होगई। आज सारा भारतवर्ष लालाजी की अनुपस्थिति में निर्धन सा हो रहा है। उनकी इस समय बहुत आवश्यकता है। लालाजी की मृत्यु का समाचार पाकर महामना मालवीयजी बड़े दुखी हुए। ये दोनों महापुरुष एक ही कार्य-क्षेत्र के दो बड़े प्रभावशाली नेता थे। हिन्दू-समाजरूपी गृह के ये ही दो रक्षक थे या यों कहिये कि लालाजी और मालवीयजी दोनों व्यक्ति एक ही मंडल के सूर्य और चन्द्रमा थे। उनमें से पहले ने पश्चिम गोलार्ध में उस समय अपना पूर्ण प्रकाश फैलाया था, जब कि पूर्व में बिलकुल अंधकार था और ज्योंही वह पूर्व में अपनी प्रखरता को लिये हुए मध्याह्न में आरहा था, कि सहसा उसके ऊपर सायमन कमीशन तथा नौकरशाही रूपी राहु-केतु के द्विगुणित प्रहार ने ग्रहण लगा दिया। वह ग्रहण क्षणिक नहीं; सर्वदा के लिए

स्थायी होगया । इस प्रकार भारत के विपत्ति के समय उनञ्चासों पवनों को बहते देख कितने ही धीर-वीर पुरुष चलायमान होगये । मालवीयजी को इससे बहुत कष्ट हुआ । लालाजी की मृत्यु के बाद दिल्ली के प्रसिद्ध दैनिक पत्र (हिन्दुस्तान टाइम्स) ने 'लाजपत अंक' निकाला । उस अंक में महामना मालवीयजी से लालाजी के विषय में कुछ लिखने के लिए पत्र के सम्पादक ने विशेष आग्रह किया । मालवीयजी ने इस प्रकार लिखा :—

"आपने अपने विशेषांक के लिए लालाजी विषयक लेख लिखने का आग्रह तो किया पर क्या आप इस बात का थोड़ा सा भी अनुभव करते हैं कि लालाजी के ऐसे समय में उठ जाने से मुझे कितना दुःख हो रहा है ? शोक मनुष्य को शक्ति-हीन बना देता है । मैं जितना शीघ्र हो सकता है शोक को भगाने का प्रयत्न कर रहा हूँ, क्योंकि शोक की दशा का एक-एक क्षण मुझे अपने देश के प्रति कर्तव्य करने में बाधा पहुँचाता है । लालाजी चले गये । हम लोगों को उस भार को अपने कंधे पर ग्रहण करना होगा जिसे कि लालाजी ने खूबी के साथ धारण किया था । लालाजी जैसा सच्चा देशभक्त, मातृ-भूमि की उन्नति करनेवाला देश-सेवक अभी तक कोई नहीं हुआ । वे स्वतंत्रता के लिए युद्ध करते हुए मरे हैं । वे बड़े ही बुद्धिमान् थे । उनके और उनके साथियों के ऊपर लाहौर में जो पाशविक प्रहार किया गया उससे उन्हें अधिक चोट पहुँची

थो। इस घटना के बाद मैं उनसे कई बार मिला; पर उनकी मुखाकृति पर एक विशेष प्रकार की चिन्ता देखता था, जैसी कि मैंने पहले कभी नहीं देखी। वे अपने हृदय के इस दुःख को और इस बात की लज्जा और संन्ताप को अपने हृदय में ही लेते गये कि हम लोग अपने ही देश में एक ऐसी शासन-प्रणाली के अन्तर्गत रहते हैं जो कि मातृभूमि के सर्वश्रेष्ठ पुत्र रत्नों पर भी ऐसे-ऐसे अपमानजनक व्यवहार और बार करने में वह नहीं चूकती। हम लोगों को चाहिए कि इस प्रकार की शासन-प्रणाली के स्थान पर शीघ्रातिशीघ्र स्वतन्त्र शासनप्रणाली स्थापित करें।"

जिस समय सायमन-कमीशन के स्वागत का प्रश्न भारत में उठा उस समय भारतवर्ष में दो दल होगये। एक स्वागत के पक्ष में था, दूसरा विपक्षमें। देश का अधिकांश जन-समूह विपक्ष में ही था। देश का प्रत्येक भक्त इसे महा-अपमानकारक समझ कर इसके स्वागत का विरोध कर रहा था, जैसा कि ऊपर लिखा जाचुका है, इसी कमीशन-विरोधरूपी जाल में पंजाब का सिंह (लाला लाजपतराय) मारा गया। लोग एक दूसरे का मुँह ताकते रहे कि देखें, अमुक सज्जन क्या करते हैं। बहुत लोगों का यह विचार था कि मालवीयजी कमीशन से विरोध न करेंगे, क्योंकि यदि वे विरोध करेंगे तो सरकार उनसे अप्रसन्न होकर हिन्दू-विश्वविद्यालय को सहायता देना बन्द कर देगी। एक दिन एकाएक यह समाचार पत्रों-द्वारा

भारतवर्ष में व्याप्त होगया कि मालवीयजी ने दिल्ली में कमीशन से असहयोग करने के लिये एक सार्वजनिक सभा में भाषण दिया है। उन्होंने कहा कि—"मैं सायमन-कमीशन का इसलिए पूर्ण विरोध करता हूँ कि वह देश के लिये बड़ा ही अपमान-कारक है।" कुछ लोगों को इससे भी सन्तोष न हुआ और लोगों ने मालवीयजी से प्रश्न किया कि तीन फरवरी वाले दिन जो सार्वदेशिक हड़ताल होने वाली है उस दिन क्या हिन्दू-विश्वविद्यालय के विद्यार्थी भी हड़ताल करेंगे? आपने उत्तर में यही कहा कि हिन्दू-विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने कभी देश के कामों में पीछे रहने की शिक्षा नहीं पाई है और न वे कभी देशहित के कार्यों में पीछे रहेंगे।

सन् १९२८ में सायमन कमीशन के आने के बाद से ही वर्तमान क़ानून-भंग आन्दोलन (१९३०) का श्रीगणेश हुआ। सायमन कमीशन के कारण हमारे नेताओं को यह विश्वास होगया कि देश अब बहुत कुछ शक्ति प्राप्त कर चुका है क्योंकि सारे भारतवर्ष में नौकरशाही के भक्तों को छोड़ किसी ने भी कमीशन का स्वागत नहीं किया। सर्वत्र वहिष्कार ही वहिष्कार हुआ। फिर लाहौर-काँग्रेस (दिसम्बर १९२९) में एक स्वर से 'स्वतन्त्रता की घोषणा' करके लोगों ने यह साफ़-साफ़ प्रमाणित कर दिया कि देश अब आज़ादी के लिए लड़ने को पूर्ण रूप से तैयार है। काँग्रेस ने 'स्वतन्त्रता की घोषणा' के प्रस्ताव के साथ एक प्रस्ताव यह भी पास किया 'यह काँग्रेस प्रत्येक

भारतवासी को आदेश करती है कि यदि वह बड़ी या छोटी किसी भी व्यवस्थापिका सभा का सदस्य हो तो फ़ौरन इस्तीफ़ा दे देवे।' इस पर उन लोगों ने जो कि कांग्रेस के नाम पर कौंसिल या एसेम्बली में गये थे इस्तीफ़ा दे दिया, कुछ अन्य दलों के लोगों ने भी इस्तीफ़ा दिया। मालवीयजी नेशलिष्ट दल के थे, उन्होंने पहले इस्तीफ़ा नहीं दिया। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि मालवीयजी कौंसल या एसेम्बली में जाने के सम्बन्ध में कांग्रेस की नीति के विरोधी थे। इसी 'कौंसिल-त्याग'-विषय पर आपने सन् १९२१ में भी कांग्रेस से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया था। पर सरकार की कड़ी नीति से मालवीयजी ने आखिरी बार सन् १९३० में एसेम्बली का त्याग कर ही दिया। यही नहीं, बल्कि अपने दल के दल को त्याग करने के लिए बाध्य किया। आपके प्रयत्नस्वरूप सात सदस्यों ने सभा से इस्तीफ़ा दिया। उनमें प्रसिद्ध श्रीमान् घनश्यामदास बिड़ला भी थे। आपके इस त्याग पर इलाहाबाद के लीडर पत्र ने बहुत दुःख प्रकट करते हुए तथा आपकी भूल बतलाते हुए अपने सम्पादकीय लेख में लिखा था कि "ऐसे लोग जो कौंसिल और एसेम्बली के ऐसे विश्वासी भक्त थे उसका त्याग कर रहे हैं तो कौन नहीं कह सकता कि सरकारी शासन की कठोरता हद तक पहुँच गई है।" आपने जो एसेम्बली-त्याग किया उसका देश पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। मालवीयजी ने अपना त्याग-पत्र देते हुए लिखा था कि "जिस

एसेम्बली में सम्मिलित होकर मैं समझता था कि देश का कुछ भला किया जा सकता है वह ख़याल अब ग़लत निकला। कौंसिल में रह कर अब देश का कुछ भी भला नहीं हो सकता अतः अब यहाँ रहने की आवश्यकता नहीं है।" एसेम्बली छोड़कर आपने ठीक किया या ग़लत इसका विचार करना बड़े-बड़े राजनैतिकों का काम है। एसेम्बली में आपने महात्माजी की गिरफ़्तारी के सम्बन्ध में कहा था कि महात्माजी के पीछे एक लाख आदमी तैयार हैं जो सविनय अवज्ञा करेंगे। पर एसेम्बली छोड़ने के बाद आप सत्याग्रह-आन्दोलन में सम्मिलित नहीं हुए। जिस कार्य में आप सम्मिलित हुए वह था 'विदेशी-वस्त्रों के वहिष्कार का आन्दोलन।' आप एसेम्बली छोड़ते ही विदेशी वस्त्र के व्यापारियों के अड्डे पर जाने और उनको समझाने लगे, जगह-जगह सभायें कीं, जनता को समझाया, व्यापारियों से इक़रार करवाया कि वे एक नियमित समय तक विलायती कपड़े का व्यापार न करेंगे। दिल्ली से चलते ही आप पहले पञ्जाब में भ्रमणार्थ पहुँचे और २४ मई तक (लगभग ५ सप्ताह) पंजाब में भ्रमण करने के उपरान्त पुनः दिल्ली पहुँचे। इस बीच आपने सारे पंजाब में इकतीस बड़ी-बड़ी सभाओं में भाषण दिया। इसके सिवाय रेलगाड़ी के डिब्बे में बैठे-बैठे आपने चालीस स्थानों पर स्टेशन पर आई हुई जनता के आग्रह पर 'वहिष्कार' के महत्त्व पर भाषण दिया। जहाँ जनता को मालूम होता कि आप

अमुक स्टेशन पर पाँच-या सात मिनट ठहरेंगे वहीं ठसा-ठस भीड़ जमा हो जाती और आपको लाचार होकर भाषण देना पड़ता। कुल स्थानों को मिला कर आपने लगभग ५ लाख जनता को उपदेश दिया। इन सभाओं में स्त्रियाँ काफ़ी संख्या में उपस्थित होती थीं। कहीं-कहीं तो स्त्रियों की सभायें अलग भी होती थीं। उन स्त्रियों की संख्या, जिन्होंने उनका व्याख्यान सुना लगभग एक लाख के अनुमान की जाती है। पुरुषों की सभाओं में मालवीयजी के पुत्र श्री गोविन्द मालवीय और श्री गोस्वामी गणेशदत्तजी भी भाषण देते थे। विशेषतया श्री गोविन्द मालवीय को उन सभाओं में जाना पड़ता था, जो कि नवयुवकों की होती थीं क्योंकि वे लोग आपके भाषण को अधिक पसन्द करते थे। पंजाब के बाद आप संयुक्त प्रान्त के प्रमुख नगरों जैसे काशी, कानपुर, प्रयाग आदि में जाकर—'वहिष्कार'-आन्दोलन पर भाषण दिया और व्यापारियों से विदेशी वस्त्र न बेचने और ख़रीदने का प्रतिज्ञा-पत्र लिखवाया। पंजाब-यात्रा के समय लाहौर में तारीख़ २० मई सन् १९३० को एक बड़ी महती सभा में भाषण देते हुए जनता को आपने उपदेश दिया कि लड़ाई जारी रखो। विदेशी वस्त्र का त्याग करो और लड़ाई के काल में अपने कार्य को शान्ति के साथ चलाते रहो। सरकार की वर्तमान नीति की आलोचना करते हुए आपने कहा कि सरकार-द्वारा जो कार्रवाइयाँ इस समय हो रही हैं वे बहुत ही अन्यायपूर्ण हैं और ग़ैरक़ानूनी

हैं। आन्दोलन गाँव-गाँव में फैल रहा है। यदि सरकार अभी ध्यान नहीं देती तो उसे लाचार होकर स्वराज्य मंज़ूर करना पड़ेगा। इस तरह आप ३० जून तक बम्बई, कलकत्ता आदि नगरों का भ्रमण कर पुनः दिल्ली पहुँचे। वहाँ से आप उसी दिन बम्बई के लिए दुबारा रवाना हो रहे थे। रास्ते में मोटर पर मेरठ तक आये; पर बीच में ही उन्होंने पण्डित मोतीलालजी की गिरफ़ारी तथा अखिल-भारतवर्षीय काँग्रेस कमेटी की कार्य-कारिणी समिति को सरकार-द्वारा ग़ैरकानूनी संस्था करार दिये जाने का समाचार सुना। इस से आपने अपना कार्य-क्रम बदल दिया और प्रयाग पहुँचे। प्रयाग पहुँच कर श्री मोतीलालजी से नैनी-जेल में मिले। मिलने के बाद आपने श्री बल्लभभाई पटेल को, जोकि पण्डित मोतीलालजी की जगह पर सभापति नियुक्त हुए थे, निम्न-लिखित आशय का एक तार दिया। "आख़िरी दो महीनों में सरकार ने जो दमन-नीति चलाई है उसमें सबसे बड़ा दमन अख़िल-भारतवर्षीय काँग्रेस कमेटी की कार्य-कारिणी समिति को ग़ैरकानूनी संस्था करार देना है। इस अवस्था में यदि मैं सरकार को कोई उचित उत्तर दे सकता हूँ तो वह यही है कि मैं भी उसी ग़ैरकानूनी संस्था का सदस्य बन जाऊँ। जब आप मेरी ज़रूरत समझें मुझे आज्ञा दें।" उस दिन से आप भी काँग्रेस की कार्य-कारिणी समिति के सदस्य बन गये। इस समय नगर-नगर घूम-घूम कर मालवीयजी स्वदेशी का प्रचार कर रहे हैं। आपके साथ

श्रीपटेलजी (सभापति) भी हैं। आप दोनों घूम-घूम कर देश के शतशः सोये हुए भारतवासियों को जगाते फिरते हैं। आप उन्हें स्वदेशी के गुण, देश-प्रेम का पाठ, मातृभूमि की सेवा और सबसे बड़ा अपना कर्तव्य अपने देश के प्रति पालन करने के लिये उपदेश देते फिर रहे हैं।

काँग्रेस की कार्य कारिणी समिति के सदस्य होने के कुछ ही दिनों के बाद उसकी एक बैठक में उपस्थित होने के लिए मालवीयजी बम्बई पहुँचे। वहाँ तारीख २ अगस्त १९३० को लोकमान्य तिलक की पुण्य-तिथि मनाई जारही थी। उसमें एक बड़ा भारी जलूस निकालने का निश्चय किया गया था। जिस समय इस निश्चय का समाचार सरकारी अधिकारियों को मिला उसी समय पुलीस-कमिश्नर ने श्रीमती हंसा मेहता के नाम एक पत्र लिखा कि जलूस नहीं निकाला जा सकता। काँग्रेस वालों ने इस क़ानून को तोड़ना अपना धर्म समझ कर जलूस निकाला। जलूस में धीरे-धीरे एक लाख आदमी होगये। महामना मालवीयजी उस समय जलूस के अगुआ थे। पुलीस के आफ़ीसर लिस्टर गाडविन ने विक्टोरिया टरमिनस स्टेशन पर जलूस को रोक दिया और मालवीयजी से कहा कि जलूस को आगे न बढ़ने दिया जायगा। इस पर उन दोनों में इस प्रकार बातचीत हुई:—

मलवीयजी—तब हम यहीं खड़े रहेंगे।

आफ़िसर—कब तक खड़े रहोगे?

मालवीयजी—अपने जीवन के अन्तिम दिवस तक। पर तुम कुछ नहीं कर सकते तुम्हें इंगलैंड जाना पड़ेगा।

आफ़ीसर—मैं पचास वर्ष के बाद जाऊँगा।

मालवीयजी—तुम्हें अवश्य जाना होगा। अच्छा हो जो अभी मित्र की हैसियत से जाओ, नहीं तो बाद को दुश्मन बन कर जाना होगा।

आगे चलकर आफ़ीसर ने मालवीयजी से कहा कि जलूस के आगे स्त्रियों को रखना अपनी कायरता दिखाना है। जब मालवीयजी ने उन्हें उनके देश का दृष्टान्त दिखाते हुए उचित उत्तर दिया तब उसने कहा कि हम भारत सर्कार की आज्ञा से आपके जलूस को रोक रहे हैं। मालवीयजी ने कहा कि "सर्कार की आज्ञा ग़लत है, हम उसको अवश्य तोड़ेंगे।" बाद को उन्हें उसी दिन सर्दार बल्लभ भाई पटेल, जयरामदास दौलतराम, डाक्टर हार्डीकर महोदय तथा बैरिस्टर शेरवानी के साथ गिरफ़्तार कर लिया गया। इसके पहले पेशावर जाते समय भी सरकार ने उनके ऊपर वारंट निकाला था। पर पकड़ कर तीन घंटे के बाद ही छोड़ दिया था। तारीख़ तीन अगस्त सन् १९३० को मालवीयजी बम्बई में गिरफ़्तार हुए।

मालवीयजी को पकड़ कर पुलिस की हवालात में रखा गया। पाँच अगस्त को मुक़द्दमा चला। काँग्रेस के अन्य नेता पटेल, शेरवानी आदि ने न्यायालय की किसी भी कारवाई में भाग नहीं लिया; परन्तु मालवीयजी ने गवाहों से जिरह

की। मुक़द्दमा ११ अगस्त सन् १९३० तक के लिये स्थगित किया गया। पर न मालूम क्यों ६ अगस्त को ही न्यायाधीश ने न्याय की घोषणा कर दी। मालवीयजी को पन्द्रह दिन क़ैद की सज़ा या सौ रुपया ज़ुर्माना देने की आज्ञा हुई। मालवीयजी के मना करने पर भी किसी अजनबी व्यक्ति ने सौ रुपया दंड का जमा कर दिया और मालवीयजी छूट गये। मालवीयजी इसके लिए पश्चात्ताप करने लगे; पर जेल-सुपरिन्टेन्डेन्ट के विशेष आग्रह से आप जेल छोड़ कर बाहर आये।

न मालूम आगे चलकर इस स्वतन्त्रता के युद्ध में मालवीयजी का क्या काम होगा, पर इतना तो सबों को मानना ही पड़ेगा कि भारत के लिए प्राणपण से चेष्टा करनेवालों में मालवीयजी का स्थान बहुत ऊँचा है।

जेल जाते समय आपने देश वासियों के विशेष आग्रह पर निम्नलिखित उपदेश दिया :—

देश के पुरुषों और महिलाओं!! यह तुम्हारी परीक्षा का समय है। इस समय देश में स्वराज्य के प्रति जो इतनी महान् जागृति दिखाई पड़ रही है उससे मेरा यह विचार और भी दृढ़ होरहा है कि सरकार की उन बुराइयों के कारण, जिससे कि हमारे राष्ट्र की अप्रतिष्ठा होती है, वर्तमान शासन के स्थान पर स्वराज्य अवश्य कायम होगा। जिस में जनता ही जनता के ऊपर और जनता की भलाई के लिए शासन करेगी और वह दिन भी अब दूर नहीं जब कि हम अँग्रेज़ों की

तरह अपने देश के स्वामी बन जायँगे। कार्य को चलाते रहिए। परीक्षा के लिए तैयार रहिए। मातृभूमि के प्रति कर्तव्य-पालन करते समय आपके ऊपर जितनी कठिनाइयाँ पड़ें, जितनी विपत्ति उठानी पड़ें उनके लिए मुँह न मोड़िये। इस बात का ध्यान रखिए कि जबतक हम अपने ध्येय को न प्राप्त कर लें तबतक आन्दोलन ढीला न पड़ने पावे। इसके उपरान्त सब से आवश्यक कार्य यह है कि आप खद्दर पहिनिये। स्वदेशी वस्तुओं का ही व्यापार और व्यवहार कीजिए। मातृ-भूमि को स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये और संसार के राष्ट्रों की श्रेणी में स्थान दिलाने के लिये आप सब प्रकार के त्याग करते रहिए।"

तारीख ८ अगस्त, १६३० को बम्बई-जेल से छूटने के बाद पूज्य पंडित मदनमोहन मालवीय, अपने पुत्र और मंत्री पं० गोविन्द मालवीय के साथ महात्माजी की और सरदार पटेल की पुण्य भूमि में जगह-जगह घूमे। गोधरा में उन्होंने अपनी गुजरात की विस्तृत यात्रा समाप्त की। गोधरा के रेलवे-स्टेशन पर हज़ारों मनुष्यों की भीड़ ने अपने पूज्य नेता का स्वागत किया। पंडितजी की आज्ञा से जुलूस निकाल कर चलने का उपक्रम न किया गया। प्रातःकाल मालवीयजी ने पन्द्रह हज़ार के विराट जनसमूह में भाषण दिया। स्त्रियों की संख्या भी बहुत अधिक थी। उन्होंने अपने भाषण में विलायती वस्त्रों के वहिष्कार का उपदेश दिया और नशीली वस्तुओंको छोड़ देने की बात कही। इसके उपरान्त वे मोटर-द्वारा हलोल नामक स्थान को गये।

यहीं उनकी गुजरात-यात्रा का कार्यक्रम पूरा हुआ और यहीं से वे देहली-कांग्रेस-कार्यकारिणी की बैठक में गये।

पूज्य मालवीयजी की गुजरात-यात्रा नौ दिनों में समाप्त हुई। कुछ दिनों तक माननीय विट्ठलभाई पटेल भी मालवीयजी के साथ रहे। इस यात्रा में गुजरात के जितने अधिक स्थानों में मालवीयजी पहुँचे, वह आश्चर्यजनक था। सूरत, नवसारी, जलालपुर, बार्दोली, बोरसद, आनंद, नडियाद, बरोदा, जम्बुसर, भड़ोंच, अहमदाबाद, डाकोर, गोधरा, हलोल और दोहद तो उनकी यात्रा के प्रधान स्थान थे। इनके अतिरिक्त अनेक रेलवे-स्टेशनों पर उनके ओजस्वी व्याख्यान हुए। प्रत्येक स्थान पर हज़ारों की संख्या में लोग पूज्य मालवीयजी के दर्शन करने और उनकी अमृतवाणी सुनने के लिये आते थे।

सूरत में सबसे अधिक जोश देखा गया। यहाँ की सभा में सत्तर हज़ार मनुष्यों का अपार समुदाय इकट्ठा हो गया था। अन्य स्थानों में भी गांधी टोपी धारण किये, खद्दर पहने हज़ारों पुरुषों और स्त्रियों की भीड़ गतिशील समुद्र की तरह देख पड़ती थी। अहमदाबाद में मालवीयजी ने मिलों में जा-जाकर मज़दूरों से बातचीत की। वहाँ मज़दूरों की एक विराट् सभा में उनका व्याख्यान भी हुआ। मालवीयजी ने मज़दूरों की कठिनाइयों और कष्टों का पता लगाया और मिल मालिकों को मज़दूरों के कष्टों को दूरकर देने का आदेश यदि

इसके अतिरिक्त अछूतों की सभा में उन्होंने उनसे राष्ट्रीय आन्दोलन में शरीक होकर काम करने पर ज़ोर डाला।

रेलवे-स्टेशनों और मोटर के रास्ते में पड़नेवाले गाँवों में तो मालवीयजी के अनेक व्याख्यान हुए। किन्हीं-किन्हीं गाँवों में तो लोग हज़ारों की संख्या में उपस्थित होते थे। स्त्रियों की जागृति भी बड़ी ही संतोषजनक देखी गई। उत्तरसंद नामक गाँव की सभा की प्रशंसा करते हुए मालवीयजी ने बतलाया की ऐसी सुव्यवस्थित सभा उन्होंने बहुत कम देखी थी। कई हज़ार पुरुष और स्त्रियाँ सभा में थीं। उनमें हज़ारों मंच पर बैठे चरखा और तकला कातने में लगे थे। अन्य अनेक सभाओं का विवरण यहाँ दिया नहीं जा सकता। वास्तव में पूज्य मालवीयजी ने उन दिनों गुजरात में इतना अधिक काम किया कि उनके मंत्री तथा सहायक उनका कार्यक्रम तैयार करने में भी बड़ी परेशानी में पड़े होंगे। अपनी पूरी यात्रा में मालवीयजी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता का उपदेश दिया और बड़े ही ज़ोरदार शब्दों में विलायती वस्त्र और मादक द्रव्यों का निषेध किया। उन्होंने सबसे अपने काम पर अटल रहने को कहा। उनके भाषण असाधारण रूप से ओजस्वी थे।

देश के शान्तिपूर्ण युद्ध में वीरता के साथ भाग लेने के लिए मालवीयजी ने सारे गुजरात को बधाई दी। उन्होंने कहा कि अब कुछ महीनों की बात और रह गई है। भय का काम

नहीं। यदि वे इतना कर सके तो छः महीने के भीतर ही अथवा इससे भी कम समय में सरकार की बुद्धि ठीक हो जायगी और वह महात्माजी, सरदार पटेल से संधि करने को तैयार होगी; तब भारतवर्ष स्वराज्य प्राप्त करेगा।

पूज्य मालवीयजी की इस गुजरात-यात्रा ने सारे प्रान्तों में नई जागृति पैदा कर दी।

गुजरात की यात्रा समाप्त करने के बाद ही दिल्ली में अखिल भारतवर्षीय राष्ट्रीय महासभा की कार्य कारिणी-समिति की बैठक होने वाली थी। इधर सरकार इसको ग़ैर क़ानूनी क़रार देने की घोषणा कर चुकी थी; पर नेताओं ने न माना और वे शीघ्र दिल्ली पहुँचे। मालवीयजी भी तारीख़ २६ को गोधरा से दिल्ली पहुँचे। २७ अगस्त १६३० ई० को बैठक होने वाली थी। लगभग ३ बजे सरकारी कर्मचारी गिरफ़्तारी का वारंट लिए हुए पहुँचे और समिति के तमाम मेम्बर—डाक्टर अन्सारी, महामना मालवीयजी, श्रीविट्ठल भाई पटेल, श्रीमथुरा दास त्रीकमजी, लाला दुनीचन्द (अंबाला) श्री दीपनारायण सिंह, डाक्टर विधानचन्द्रराय, सरदार मंगलसिंह और चौधरी अफ़ज़ल हक़ तथा श्री राजारावजी पकड़े गये। तारीख़ २८ को सरकार ने इन राजद्रोहियों पर, जिन्होंने देशभक्ति का महान् अपराध किया था, अभियोग चलाया और मालवीयजी तथा पटेल ऐसे वृद्धों को छः-छः मास के कारागार का दंड दिया।

जेल जाते समय श्री माननीय पटेल ने (जो असेम्बली के अध्यक्ष रह चुके हैं) कहा—"अब मुझे खिताब और पेन्शन मिल गई।" इन शब्दों में कितनी मार्मिकता भरी पड़ी है। पाठक स्वयं समझ सकते हैं। जेल जाते समय श्रीमान् मालवीयजी ने निम्न लिखित सन्देश दिया—"देश के प्रत्येक स्त्री-पुरुष को आनेवाले कष्टों और विघ्नों की ज़रा भी परवाह न कर मुस्तैदी से इस अहिन्सात्मक युद्ध को जारी रखना चाहिए। स्वतन्त्र भारत का ध्यान हमें इस युद्ध में बल देगा। मुझे यह जानकर बड़ा हर्ष हो रहा है कि देश के निवासी बूढ़े, जवान, बच्चे और स्त्रियों ने स्वाधीनता के प्रेम का और त्याग का सर्वोच्च भाव दिखलाया है। हमें अपने देश का स्वामी बनना होगा। वह हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है। ईश्वर हमारे उद्योग पर प्रसन्न हो रहा है।"

पण्डित मदनमोहन मालवीयजी जब पहलेपहल जेल से छूटे तब बहुत से लोगों ने मालवीयजी के इस प्रकार जेल से बाहर आने की निन्दा की। जिसकी समझ में जो आया कह डाला, पर उसमय जो बात मालवीयजी ने सोची होगी उसे वही समझ सकते हैं। ख़ैर, जो कुछ हो; यह कहना अनुचित न होगा कि इस द्वितीय जेल-यात्रा ने मालवीयजी के देश-प्रेम की पराकाष्ठा दिखला दी है। इस अवस्था में जेल जाना कोई साधारण बात नहीं है। देश के आज़ाद होने पर हमारे लाखों नौनिहाल बच्चे, जो आज भूखों मर रहे हैं, अशिक्षा के

कारण कठिन यम-यातना को सह रहे हैं—भर पेट भोजन पावेंगे। शरीर ढँकने के लिए वस्त्र पावेंगे। यही मालवीयजी जैसे महान्‌पुरुषों के जीवन का उद्देश्य है। बड़ी व्यवस्थापिका सभा में भाषण देते हुए मालवीयजी ने एक समय कहा था कि "जनता को जो दुःख हो रहा है जिस बात से वह दुखी हो रही है उसको दुःख के कारण हमें भी दुःख है।" महामना मालवीयजी की, विद्वत्ता, पाण्डित्य, महानता, विद्यानुरागिता, दयालुता, परोपकारिता, कार्य-पटुता, अतुल सहनशीलता, निर्भीकता, धार्मिकता, बुद्धिमत्ता, सज्जनता, देश भक्ति, आत्म त्याग तथा कार्य-तत्परता आदि गुण भारत के उत्थान के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में वर्णित होंगे। भविष्य में वे रामकृष्ण की तरह पूजे जायँगे। लोग इनके नाम को प्रेम और उल्लास के साथ स्मरण करेंगे। यही उनके महान् त्याग का पुरस्कार होगा। दीन भारत समय आने पर अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करेगा। महामना मालवीयजी के जीवन-इतिहास में उनका जेल जाना एक महान् घटना है।

मालवीयजी और स्वदेशी-प्रचार

सन् १९०६ की कलकत्ता-कांग्रेस में 'बहिष्कार-आन्दोलन' के प्रस्ताव पर भाषण देते हुए आपने कहा था कि "मैं आशा करता हूँ वह समय कभी नहीं आवेगा जब कि देश आवश्यकता-वश या विरोधस्वरूप बहिष्कार-आन्दोलन को एक कोने से दूसरे कोने तक फैलाने के लिए बाध्य होगा।" जैसे आपकी और-और राजनैतिक सुधारों की आशायें विफल हुईं वैसे ही आप का यह भविष्य-वचन भी विफल हुआ और आज देश एक कोने से दूसरे तक बहिष्कार-आन्दोलन के लिए जी-जान से लड़ रहा है। पुलीस के डन्डे-गोलियों की बौछार सह कर भी हमारे भाई विदेशी वस्तुओं का त्याग कर रहे हैं। मालवीयजी की वह आशा व्यर्थ निकली और स्वयं आप भी असेम्बली छोड़ने के बाद उसी आन्दोलन में कूद पड़े। यों तो जो कोई भी देश का हितैषी होगा वही स्वदेशी के प्रचार पर ज़ोर देगा; पर, आप ने इस विषय में जितना भाग लिया है उतना कम लोगों ने लिया होगा। एसेम्बली छोड़ने के बाद से ही आपने सारे देश में इस आन्दोलन को सफलीभूत बनाने के लिए दौड़ लगाना शुरू कर दिया। पहले आपने पंजाब में भ्रमण किया; फिर बम्बई, संयुक्त-प्रान्त और बंगाल आदि देशों में जाकर व्यापारियों से परामर्श किया, उन्हें समझाया-बुझाया और उनसे वादा

कराया कि वे एक नियमित समय तक विदेशी माल का लेना और बेचना बिलकुल बन्द कर देंगे। आज जो विदेशी वस्तु-वहिष्कार-आन्दोलन इतना जोर पकड़े हुए है, उसमें आपका विशेष हाथ और परिश्रम है। पर इससे यह न समझना चाहिए कि मालवीयजी ने स्वदेशी-प्रचार के मूल्य को तथा विदेशी-वहिष्कार के महत्त्व को आज सन् १९३० में ही समझा है। आप स्वदेशी-प्रचार के बहुत पुराने भक्त और समर्थक हैं। बहुत प्राचीन काल से स्वदेशी-प्रचार के लिए आप आन्दोलन कर रहे हैं।

मालवीयजी के जीवन की अलौकिकता

आपकी दयालुता तथा परोपकारिता की अनेकानेक कहानियाँ हैं जिनसे यह प्रमाणित होता है कि आपका जीवन कितना आदर्शमय है। यहाँ मैं उन घटनाओं में से एक को उद्धृत करता हूँ। जिस समय प्रयाग में मिस्टर फ़िराई कलक्टर थे उस समय वहाँ महामारी का भारी प्रकोप हुआ। मालवीयजी उस समय प्रयाग-म्युनिसिपल बोर्ड के वाइस चेयरमैन थे। कलक्टर साहब ने आप से सहायता माँगी और आपने प्रसन्नतापूर्वक उनको सहायता दी। लगभग एक पक्ष तक प्लेग के भयंकर दिनों में, अँधेरी गलियों में जा-जाकर वे रोगियों को देखते थे। इसके बाद आपने एक नया 'स्वास्थ्य-स्थान' (हैल्थ कैम्प) खोलने का विचार करके उसके लिए आन्दोलन करना आरम्भ किया। इस 'स्वास्थ्य-स्थान' के लिए सोहबतिया बाग़ चुना गया, जहाँ कि एक समय लगभग उन्नीस सौ कुम्टुम्बों को प्लेग से पनाह मिली थी। पहले वर्ष मालवीयजी सुबह-शाम उस स्थान पर जाते थे। अक्सर लोगों का यह ख़याल है कि जहाँ प्लेग के रोगी रहते हैं वहाँ नहीं जाना चाहिए; पर मालवीयजी अस्पताल में भी जाते थे,

जहाँ प्लेग के रोगी पड़े रहते थे । फिर पंजाब के एक ग़रीब देश-भक्त को आपने अपने पास से रुपया देकर काश्मीर में स्वास्थ्य-सुधार के लिए भिजवाया था।

विद्यार्थियों पर आपकी विशेष दया रहती है । उनको हर प्रकार से सहायता पहुँचाने के लिए आप नित्य परिश्रम करते रहते हैं । आपकी यही इच्छा रहती है कि ग़रीब, धनी सभी तरह के विद्यार्थी शिक्षा अवश्य प्राप्त करें। कोई भी शिक्षा से वंचित न रहने पावे। आप ग़रीब-धनी का विशेष विचार नहीं करते और आपकी संस्था हिन्दू-विश्वविद्यालय की एक ख़ास बात यह है कि वहाँ ग़रीब और धनी सभी प्रकार के विद्यार्थियों के साथ एक सा बर्ताव होता है । एक धोती पहन कर और उसी का आधा हिस्सा ऊपर ओढ़ कर भी विद्यार्थी कालेज में जा सकता है और पढ़ सकता है । यह सब आप की ही दया का फल है।

मालवीयजी की योग्यता तथा विद्वत्ता के विषय में क्या कहना है । आपने यद्यपि कोई परीक्षा प्रथम श्रेणी में नहीं पास की है तब भी आपने जिस विषय का अध्ययन किया तथा उसमें जितनी योग्यता और सफलता प्राप्त की उतनी बहुत कम लोगों ने की है । अँग्रेज़ी भाषा के आप एक बड़े विद्वान् हैं । जिस समय आप अँग्रेज़ी में भाषण देने लगते हैं उस समय यह नहीं मालूम होता कि अँग्रेज़ी आपके लिए विदेशी भाषा है या निज की । संस्कृत भाषा के भाव से भी आप

महान् पण्डितों में गिने जाते हैं । धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन आपने जिस .खूबी से किया है उस .खूबी से बड़े-बड़े आचार्य भी नहीं कर सके हैं । आप शास्त्रों और पुराणों को कई बार पूर्ण रूप से पढ़ गये हैं । धर्म शास्त्रों के अनेकानेक पद, श्लोक आप को कंठाग्र हैं । गीता आप की जिह्वा पर बसती है । 'शूद्रों को मंत्र-दीक्षा का अधिकार है' इस विषय का प्रतिपादन करने के लिए आपने जो-जो उदाहरण अपने 'सनातन-धर्म-प्रदीप' में उद्धृत किये हैं उन्हें देख कर आपके अध्ययन का कुछ थोड़ा बहुत अनुमान किया जा सकता है । भाषण देते समय आप जब श्लोक आदि का प्रमाण उद्धृत करने लगते हैं तब सुनते ही बनता है । आप की भाषण-शक्ति विलक्षण है । तीन-तीन घंटे लगातार खड़े होकर आपने भाषण दिया है । सन् १९०८ ई० में लखनऊ की द्वितीय राजनैतिक परिषद् में जो भाषण आपने दिया था वह साधारण पुस्तक के ८५ पृष्ठ के बराबर है । अभी सन् १९२९ में हिन्दू-विश्वविद्यालय के समावर्तन-संस्कार के अवसर पर जो भाषण आपने दिया है वह साधारण पुस्तक के ५५ पृष्ठ के बराबर है और तारीफ़ यह कि कहीं भी ऐसी बात नहीं जिसे आप अपनी साधारण दलीलों से उड़ा सकें । कहीं भी भाषा की शिथिलता नहीं पायी जाती । कहीं भी कोई इतनी कड़ी बात नहीं कि आपको उसके विरुद्ध कुछ कहने की ज़रूरत हो । आप के भाषणों में मोहनी-शक्ति रहती है । जहाँ कहीं आप भाषण करते हैं वहाँ श्रोताओं को ऐसा मुग्ध कर लेते हैं कि वे आपके

पक्ष में हो जाते हैं। विपक्षियों को भी अपनी बातों में लपेट लेने का जो गुण आप में वर्तमान है वह बहुत कम लोगों में पाया जाता है। आपको घटनाओं का स्मरण सर्वदा बना रहता है क्योंकि आपकी स्मरण-शक्ति बहुत ही तीव्र है। आपके साधारण से साधारण भाषण भी हृदय के अन्तरंग में प्रवेश कर जाते हैं। तुलसीदासजी ने लिखा है:—

वशीकरण इक मन्त्र है, परिहरि वचन कठोर।
तुलसी मीठे वचनते, सुख उपजत चहुँ ओर॥

उपरोक्त दोहे का एक-एक शब्द आपके भाषणों में चरितार्थ होता है।

भारतवर्ष के राष्ट्रीय सेवकों में आप ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जिसकी कि जनता और सरकार दोनों इज़्ज़त करते हैं। सरकार भी आपको अपनी सभा का सदस्य चुनती थी और जनता तो आपका उचित सम्मान करती ही है। जिस दल के आप नेता थे उस दल के प्रत्येक सदस्य को कुछ न कुछ प्रलोभन देकर सरकार अपने वश में कर लेती है, जैसे किसी मिनिष्टरी, किसी को पदवी और किसी को अन्य देशों की एजेन्टी देकर अपने मत में कर लेती है; पर, मालवीयजी को सरकार का कोई भी प्रलोभन अपने वश में न कर सका। स्वभाव-वश वे सरकार के ऊपर विश्वास रखते आये हैं, पर वे कभी भी जनता को नहीं भूलते। देश की सेवा में आपने अपना अड़तालीस वर्ष का अमूल्य जीवन व्यतीत किया है।

देश ने भी उन्हें उनकी सेवा के लिए दो-दो बार राष्ट्रीय महा-सभा का प्रधान पद दिया है। देश के पास और है ही क्या जो एक ऐसे देश-भक्त के प्रति अर्पण करे। देश ग़ुलाम है, वह अपनी संतानों को जो बहुत योग्य निकलते हैं पुरस्कार स्वरूप जेल, काला-पानी, फांसी की सजा, लाठियों और गोलियों का प्रहार देता है। कभी-कभी अपनी गोद से अलग कर देने के लिये भी वाध्य होता है। पर क्या किसी ने ऐसे पुरस्कार की अवहेलना की है ?

महामना मालवीयजी के जीवन की सबसे बड़ी अलौकिकता है उनका अटूट उत्साह। वे काम करते-करते थकते नहीं, काम को अधिकता से घबराते नहीं। काम का बोझ कितना ही अधिक क्यों न बढ़ जाय पर आप उसे पूरा करके ही दम लेते हैं। जिस उत्साह से आप कठिन से कठिन कार्य को भी साध्य बना लेते हैं वह उत्साह बहुत कम लोगों में पाया जाता है। यदि आपने हिन्दू-विश्वविद्यालय के प्रति पूरे उत्साह से कार्य न किया होता तो आज वह इस अवस्था को कदापि न प्राप्त होता। जिस उत्साह से महीनों रेलवे-ट्रेन के डिब्बे में ही जीवन व्यतीत करते हुए भोजन, स्नान आदि का ज़रा भी ध्यान न रखते हुए आपने परिश्रम किया है वह अत्यन्त सराहनीय है। स्वदेशी-प्रचार के लिए भी आप आज ६८ वर्ष की अवस्था में यहाँ से वहाँ, वहाँ से यहाँ दौड़-धूप लगाते रहते हैं। आपकी आयु अब चौथे पन में पहुँच गई है, पर आपकी

उमंगें अब भी जवान हैं। आप देश के उन हज़ारों अंधकार में लिप्त नवयुवकों से बढ़ कर उत्साह दिखा रहे हैं जो कि विला-सिता की गोद में पड़े हुए अपने भविष्य को नष्ट कर रहे हैं।

देश के प्रति जो कर्तव्य आपने पालन किया है, देश के सैकड़ों नवयुवकों को शिक्षित करने के लिए जो परिश्रम आपने किया है, देश के हितकारी अनेक आन्दोलनों में आपने जो भाग लिया है और उनसे जो सहानुभूति दिखाई है उन सबके लिये-देश आपका सर्वदा ऋणी रहा है और रहेगा। आपकी देश-सेवा का बदला भारतवर्ष कभी नहीं चुका सकता। यदि इस ग़ुलाम देश में आप ऐसे महापुरुष अवतीर्ण न हुए होते तो इसकी क्या दशा होती—यह सहज में जाना जा सकता है। यदि देश ग़ुलामी की कड़ी ज़ंजीर काट कर कभी बाहर आया तो आप ऐसे महानुभावों को अपनी कृताञ्जलि अर्पण करते हुए भगवान् दयामय कृष्णचन्द्र से यही प्रार्थना करेगा कि वह आपको दीर्घायु करे और भारतवर्ष में आप ऐसी आत्माओं को अधिक संख्या में उत्पन्न करे, जिससे उसका वह गौरव-पूर्ण काल शीघ्र लौटे, जिसे हम 'सुवर्ण काल' के नाम से कहते हैं।